ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अप्रैल २०१६

Date of Printing = 05-04-16
प्रकाशन दिनांक= 05-04-16

वर्ष ४५ : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९२
विक्रम-संवत् : चैत्र-वैशाख, २०७३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११७

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

कर्म और कर्मफल-२	२
वेदोपदेश	३
आर्यसमाज की प्रासंगिकता	५
वेद ईश्वरीय ज्ञान	७
हाय! दिनकर जी.....	१०
क्या आपने घर, दुकान.....	१६
महर्षि दयानन्द........	१९
वैदिक धर्म का सार	२३

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण — ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) — ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

कर्म और कर्मफल-2

(उत्तरा नेरूर्कर,बंगलौर,मो0:- 9545058310)

पिछले माह, हमने देखा कि कैसे हमारे इस जन्म के भोगों का निर्धारण पिछले जन्मों के कर्मों से ही नहीं होता, अपितु इस जन्म के प्रयासों या आलस्य से भी प्रभावित होता है। कर्म और उसके फल के विषय में आजकल एक और विचार देखने-सुनने में आ रहा है, वह यह कि जब कोई व्यक्ति मुझसे दुर्व्यवहार करता है, तो वह उस दूसरे व्यक्ति का दुष्कर्म है। परन्तु जो मैंने उसकी गालियाँ या मार झेली, उसमें मेरे कर्मों के फलों का कोई भी प्रभाव नहीं है। प्रश्नों को दूर रखने के लिए, ऐसा मत रखने वाले कह रहे हैं कि ऐसा क्यों होता है, यह हमसे न पूछिए, यह हम बहुत मन में मन्थन करने के बाद बोल रहे हैं। जबकि ऐसा कहने वाले बहुत ज्ञानी आर्यसमाजी हैं, तथापि मुझे इसका खण्डन करना ही पड़ेगा, क्योंकि यह पूरे कर्मफल सिद्धान्त के विपरीत है।

मैंने पहले भी बताया है कि जब किसी बात में संशय हो, तब उसको उसकी अन्तिम सीमा तक खींच कर परखना चाहिए। उपर्युक्त मत को यदि हम अन्त तक ले जाएँ, तो यह भी मानना पड़ेगा कि कोई अत्यन्त तामसिक व्यक्ति, समझिए गौरव, आकर दूसरे व्यक्ति, समझिए महेश, को मार जाए, तो महेश की आयु के घटने में और उसके कर्मफल से प्राप्त आयु के विनाश में महेश का कोई हाथ नहीं है, परमात्मा का कोई हाथ नहीं है, क्योंकि गौरव अपना कर्म करने में स्वतन्त्र है, इसलिए परमात्मा उसके कृत् में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। तो महेश ने जो अच्छे कर्म करके लम्बी आयु प्राप्त की थी, उसका क्या हुआ? परमात्मा की न्याय-व्यवस्था का क्या हुआ? यह जो महेश ने झेला, यह पुण्य की कोटि में गया कि पाप की? इस पीड़ा की भरपाई कैसे होगी? और फिर कोई मेरी भलाई करे, तो वह भी उसका पुण्य होगा। और मेरा? मेरा यदि पुण्य का फल नहीं था, तो फिर इसका क्या मुझे भविष्य में दुःख झेलना पड़ेगा? क्या केवल बीमारी या दुर्घटना ही कर्मों के फल होते हैं और हम पर दूसरों के परोपकार या अत्याचार नहीं? इस प्रकार इस मत से पूरी कर्मफल-व्यवस्था को ही नकार दिया जा रहा है।

देखिए, सम्भव है कि आपने अनेक दार्शनिक ग्रन्थ न पढ़े हों और आपको विद्वानों के वचनों पर बहुत भरोसा हो, परन्तु कभी भी अपनी बुद्धि को दूसरे कमरे में छोड़कर किसी की बात मत सुनिए! सदैव अपने अब तक के दृढ़ किए हुए ज्ञान से, अपनी बुद्धि से नापिए, टटोलिए, परीक्षण करिए। आप किसी से शास्त्रार्थ करें न करें, अपना मत स्वयं बनाइये। मैं भी जो कह रही हूँ, कहने जा रही हूँ, उसे भी उलट-पलट करके अपने को सन्तुष्ट करिए, नहीं तो त्याग दीजिए।

सबसे पहले, हमें परमात्मा के न्याय में विश्वास रखना चाहिए। ऐसा कभी भी नहीं हो सकता कि जो आपने पुण्य-पाप कमाया है, उससे अधिक या न्यून कोई जीव या कोई वस्तु आपको भोग करवा सके। भोगों का निर्धारण पूरी तरह से परमात्मा के हाथों में है, उसमें कोई भी व्यक्ति या पदार्थ हस्तक्षेप करने का सामर्थ्य नहीं रखता। यह एक वेद-प्रतिपादित शाश्वत नियम है, जिसका किसी समय पर उल्लंघन नहीं होता। यदि आपको कोई इसके विपरीत मनवाने का दुस्साहस करे, तो आप उस मत को वहीं, उसके पास ही, छोड़ आएँ। यदि आपको परमात्मा के न्याय में ही संशय हो, तो सत्यार्थ-प्रकाश पुनः पढ़ें।

अब, यह प्रश्न बना रहता है कि जीव यदि अपने कर्म करने में स्वतन्त्र है, तो परमात्मा गौरव को महेश की हत्या करने से कैसे रोक सकते हैं? वास्तव में, यह प्रश्न दूसरी ओर से भी है- यदि महेश के प्रारब्ध में गौरव के हाथों से मरना पूर्व-निर्धारित है, तो परमात्मा

शेष पृष्ठ २० पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। — महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। यज्ञः = **स्पष्टम्** देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्दः। धैवतः स्वरः।।

स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते।।

वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है।।

ओ३म्– वसोः पवित्र**मसि द्यौरसि पथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि। परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।।2।।(यजु0 १/२)**

पदार्थः–(वसोः) वसुः। अत्रार्थाद्विभक्तेर्विपरिणाम इति प्रथमा विभक्तिर्विपरिणम्यते। यज्ञो वै वसुः।। श. १।५।४।६।। **(पवित्रं)** पुनाति येन कर्मणा तत् **(असि)** भवति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः। **(द्यौः)** विज्ञानप्रकाशहेतुः **(असि)** भवति **(पृथिवी)** विस्तृतः **(असि)** भवति **(मातरिश्वनः)** मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः। शवन्नुक्षन्० ।। उ. १/१५७। अनेनायं शब्दो निपातितः। मातरिश्वा वायुर्मातर्य्यन्तरिक्षे श्वसिति मातर्य्याश्वनितीति वा। निरुक्त ७/२६।। **(धर्मः)** अग्नितापयुक्तः शोधकः। धर्म इति यज्ञनामसु पठितम्।। निघं० ३/१७।। **(असि)** भवति **(विश्वधाः)** विश्वं दधातीति **(असि)** भवति **(परमेण)** प्रकृष्टसुखयुक्तेन **(धाम्ना)** सुखानि यत्र दधाति तेन। बाहुलकाड्डुधाञ्धातोर्मनिन् प्रत्ययः **(दृꣳहस्व)** वर्धते। अत्र पुरुषव्यत्ययो लडर्थे लोट् च **(मा)** निषेधार्थे **(ह्वाः)** ह्वरतु। अत्र लोडर्थे लुङ् **(मा)** निषेधार्थे **(ते)** तव **(यज्ञपतिः)** यज्ञस्य स्वामी यज्ञकर्ता यजमानः। धात्वर्थाद्यज्ञार्थस्त्रिधा भवति। विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपारमर्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणं सम्यक्पदार्थगुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षीकरणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरणमित **(ह्वार्षीत्)** ह्वरतु ह्वर वा। अत्रापि लोडर्थे लुङ् ।। अयं मन्त्रः श० १/५/४/६-११ व्याख्यातः ।।२।।

प्रमाणार्थ – (वसोः) वसुः। यहां 'अर्थ के कारण विभक्ति का विपरिणाम होता है' इस नियम के अनुसार 'वसोः' पद प्रथमा विभक्ति में विपरणित किया जाता है। शत० (१/५/४/६) में वसु का अर्थ यज्ञ है। **(असि)** भवति। इस मन्त्र में सब जगह पुरुष-व्यत्यय है। **(मातरिश्वनः)** श्वन्नुक्षन् (उ० १/१५७) में 'मातरिश्वा' शब्द निपातित है। निरुक्त (७/२६) में मातरिश्वा का अर्थ वायु है। मातरि= आकाश में, श्वसिति=गमन करता है एवं आश्वनिति= शीघ्र गमन करता है, अतः वह मातरिश्वा कहाता है। **(घर्मः)** 'घर्म' शब्द निघं० (३/१७) में यज्ञ-नामों में पढ़ा है। **(धाम्ना)** यहां 'डुधाञ्' धातु से बहुल करके 'मनिन्' प्रत्यय है। **(दृꣳहस्व)** वर्धते। यहाँ पुरुष-व्यत्यय है और लट्-अर्थ में लोट्-लकार का प्रयोग है। **(ह्वाः)** ह्वरतु। यहाँ लोट् अर्थ में लुङ्-लकार है। **(ह्वार्षीत्)** ह्वरतु ह्वर वा। यहाँ भी लोट् अर्थ में लुङ् है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१/५/४/६-११) में की गई है। १/२।।

सपदार्थान्वयः – हे विद्वन्मनुष्य! त्वं यो **वसोः=वसुरयं यज्ञः, पवित्रमसि=पवित्रकारकोऽस्ति** (पवित्रम्=पुनाति येन कर्मणा तत्, असि=भवति), **द्यौरसि=सूर्यरश्मिस्थो भवति** (द्यौः=विज्ञानप्रकाशहेतुः, असि=भवति), **पृथिव्यसि=वायुना सह विस्तृतो भवति** (पृथिवी=विस्तृतः, असि=भवति), **तथा-मातरिश्वनो घर्मोऽसि=वायोः शोधको भवति** (मातरिश्वनः=मातरि=अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः, धर्मः=अग्नितापयुक्तः शोधकः, असि=भवति) **विश्वधाअसि=संसारस्य सुखधारको भवति** (विश्वधाः=विश्वं दधातीति, असि=भवति) **परमेण** प्रकृष्टसुखयुक्तेन **धाम्ना** सुखानि यत्र दधति तेन **सह दृंश्हस्व=दृंहते=वर्धते।**

तमिमं यज्ञं मा ह्वाः=मा त्यज, (ह्वाः=हरतु), **तथा-ते=तव यज्ञपतिः** यज्ञस्य स्वामी, यज्ञकर्ता=यजमानः। धात्वर्थाद्यज्ञार्थस्त्रिधा भवति-विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपार-मार्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणं, सम्यक्पदार्थगुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षी-करणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं, शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरणामिति, **तं मा ह्वार्षीत्=मा त्यजतु** (ह्वार्षीत्=हरतु हर वा) ।।१।२।।

भाषार्थ :– हे विद्वान् मनुष्य! तू जो **(वसोः)** यज्ञ **(पवित्रम्)** पवित्र करने वाला **(असि)** है, अर्थात् पवित्र करने वाला कर्म है, **(द्यौः)** सूर्य की किरणों में स्थिर और विज्ञान प्रकाश का हेतु **(असि)** है, **(पृथिवी)** वायु के साथ देश-देशान्तरों में फैलने वाला **(असि)** है, तथा–**(मातरिश्वनः)** वायु का **(घर्मः)** शोधक **(असि)** है, अर्थात्-अन्तरिक्ष में गति करने से वायु का नाम मातरिश्वा है, उस वायु का **(घर्मः)** अग्निताप से शोधक है, **(विश्वधा)** संसार के सुख को धारण करने वाला **(असि)** है एवं विश्व का धारक है, **(परमेण)** उत्तम सुख से युक्त **(धाम्ना)** लोक के साथ **(दृंहस्व)** बढ़ता है।

उस यज्ञ का **(मा ह्वाः)** त्याग मत कर तथा **(ते)** तेरा **(यज्ञपतिः)** यज्ञ का स्वामी, यज्ञकर्ता=यजमान भी उसे **(मा ह्वार्षीत्)** न छोड़े। धात्वर्थ के कारण 'यज्ञ' शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है–

१. विद्या, ज्ञान और धर्माचरण से वृद्ध विद्वानों का इस लोक और परलोक के सुख की सिद्धि के लिए सत्कार करना, २- अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोधज्ञान की संगति से शिल्प विद्या का प्रत्यक्ष करना एवं नित्य विद्वानों का संग करना, ३-शुभ विद्या, सुख धर्मादि गुणों का नित्य दान करना।।

(वसोः= वसुरयं यज्ञः पवित्रमसि..... अस्ति, द्यौरसि. .. भवति, पृथिव्यसि, मातरिश्वनो घर्मोऽसि, विश्वधा असि)

भावार्थः– मनुष्याणां विद्याक्रियाभ्यां सम्यगनुष्ठितेन यज्ञेन पवित्रता, प्रकाशः, पृथिवी, राज्यं, वायुप्राणवद्राज्यनीतिः, प्रतापः, सर्वरक्षा–

अस्मिंल्लोके परलोके च परमसुखवृद्धिः, परस्परमार्जवेन वर्तमानं, कुटिलतात्यागश्च जायते।

अतएव सर्वैर्मनुष्यैः परोपकाराय, विद्या-पुरुषार्थाभ्यां, प्रीत्या यज्ञो नित्यमनुष्ठातव्य इति।।१।२।।

भावार्थ– मनुष्यों को विद्या और क्रिया के द्वारा विधिपूर्वक किये यज्ञ से पवित्रता, प्रकाश, पृथिवी, राज्य, वायु अर्थात् प्राण के तुल्य राज्यनीति, प्रताप, सबकी रक्षा–

इस लोक और परलोक में परम सुख की वृद्धि, परस्पर सरलता से वर्ताव और कुटिलता त्याग की प्राप्ति होती है।

इसलिए सब मनुष्यों को परोपकार के लिए विद्या और पुरुषार्थ से प्रीतिपूर्वक यज्ञ नित्य करना चाहिए।।१/२।।

आर्य समाज की प्रासंगिकता

(धर्मपाल आर्य)

आज से १४० वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८७५ में युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने मुम्बई के काकाड़बाड़ी नामक स्थान पर आर्य समाज की स्थापना की। ऋषिवर अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको मैं भी मानता हूँ; सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ। मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ, जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना व मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है"। महर्षि के उपरोक्त कथन में जो निहितार्थ है, उसे यदि हमने समझ लिया होता, तो जिस कट्टरवाद का आज पूरी दुनिया शिकार बनती जा रही है, दुनियां को उसका सामना करने की शक्ति प्राप्त होती। आज पूरा विश्व आतंकवाद, कट्टरवाद, जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद और साम्प्रदायिकतावाद जैसे खतरनाक वादों से जूझ रहा है। महर्षि दयानन्द ने हमें वेद का अमूल्य खजाना दिया, जिसके अध्ययन, मनन, चिन्तन और ध्यान से न केवल उपरोक्त खतरनाक वादों पर हम नियन्त्रण कर पाते, अपितु सम्पूर्ण विश्व में मानवता का प्रचार-प्रसार होता। व्यापक राष्टवाद एवं समग्र समाजवाद की अवधारणा जो हमें महर्षि ने विरासत के रूप में प्रदान की,वह पूरी दुनियाँ में अनुपम है।

इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः, कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तोऽराव्णः।। में महर्षि का राष्ट्रवाद है, तो **"मित्रस्य मा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुसा समीक्षामहे"।।** में महर्षि का समग्र समाजवाद झलकता है। एक में ऋषि आर्यराष्ट्र (विश्व) का सन्देश देते हैं, तो दूसरी ऋचा में ऋषि हमें एक ऐसे समग्र समाज की झाँकी दिखाते हैं, जिसमें प्राणिमात्र एक दूसरे को मित्रता की दृष्टि से देखे। जो राष्ट्र आर्यत्व की भावना से ओत-प्रोत है, जो समाज मित्रता की भावना से ओत-प्रोत है, उस राष्ट्र की व्यापकता तथा उस समाज की समग्रता में लेशमात्र भी सन्देह नहीं रह जाता। जिस राष्ट्र की व समाज की बुनियाद आर्यत्व व मित्रता पर टिकी है, उस राष्ट्र की, समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति को कोई नहीं रोक सकता। व्यापक राष्ट्रवाद, समग्र समाजवाद तथा सुलझा अध्यात्मवाद आदि ऋषि दयानन्द की हमको अनुपम देन हैं। यश के धनी, तप के धनी, विद्या के धनी, साधना के धनी, कल्पना के धनी, वाणी और लेखनी के धनी देव दयानन्द जी ने इसी उद्देश्य के लिए आर्य समाज की स्थापना की थी कि समूचे विश्व में वेदविद्या का, आर्यत्व का, मैत्रीभाव का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो, ताकि मानवता समृद्ध हो सके। आर्य समाज आज भी महर्षि की इस पावन थाती को सँभाले हुए है। इस विरासत को सँभालने में आर्यसमाज ने जिन चुनौतियों का सामना किया, उनका इतिहास तो बहुत विस्तृत है। उस विस्तृत इतिहास में जाना इस लेख का विषय नहीं है, फिर भी मुझे इतना कहने का मेरे मन में लालच हो रहा है कि सन्१८५७ से लेकर १९४७ तक के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महर्षि देव दयानन्द का और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज का योगदान और बलिदान अविस्मरणीय है। सामाजिक आन्दोलन, राजनीतिक आन्दोलन, स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा धार्मिक आन्दोलन इन सबको महर्षि के बाद सफल नेतृत्व का श्रेय यदि किसी को जाता है, तो वह है-आर्यसमाज। प्रज्ञाचक्षु ब्रह्मर्षि विरजानन्द के

अन्तेवासी अपने गुरु को इतनी बड़ी गुरुदक्षिणा देंगे, इसकी कल्पना शायद आचार्य विरजानन्द ने भी नहीं की होगी। आज हमारा देश जिन चुनौतियों के दौर से गुजर रहा है, उनमें महर्षि का व्यापक राष्ट्रवाद,समग्र समाजवाद एवं सुलझा अध्यात्मवाद और अधिक प्रासङ्गिक हो जाता है। कभी असहिष्णुता की ड्रामेबाजी, कभी रोहित वेमुला की आत्महत्या का राजनीतिकरण, कभी जे.एन.यू. में आयोजित राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में संलिप्तों की क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनावश्यक तरफदारी तथी कभी भारत की जय बोलने पर विवाद आदि ऐसे अनेक प्रसङ्ग हैं, जिन पर इस देश की राजनीति और राजनेता दोनों ही दिशाहीन हैं। आर्यसमाज ऐसी दिशाहीन राजनीति और दिशाहीन राजनेताओं का दिशानिर्देशक बन सकता है। आज के नेताओं को इतना भी होश नहीं कि वे जो बयान दे रहे हैं, उसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यदि ऐसा नहीं होता, तो शशि थरुर कन्हैया की तुलना भगतसिंह से नहीं करते। आर्यसमाज के लिए ऐसे राजनेता और राजनीति गम्भीर चुनौती हैं। राष्ट्र व समाज के लिए ऐसे नेता और राजनीति किसी अभिशाप से कम नहीं हैं। आर्यसमाज व ऋषि का चिन्तन राष्ट्र-हित से ओत-प्रोत रहा है। पर्दाप्रथा, सतीप्रथा, दहेजप्रथा, अन्धविश्वास, पाखण्ड आदि अनेकों ऐसी समस्याएँ थीं, जो इस समजा व राष्ट्र को निगलने की अहर्निश कोशिश कर रही थीं, लेकिन स्वामी दयानन्द तथा उनके उत्तराधिकारी आर्यसमाज ने उपरोक्त समस्याओं के व्यूह को न केवल सफलतापूर्वक भेदा, अपितु उन्हें समूल नष्ट करने का निर्णायक संघर्ष भी किया। आज भी समाज में जो समस्याएँ हैं, उनका सामना जितना प्रभावी ढंग से आर्यसमाज कर सकता है, उतना सामर्थ्य अन्य किसी में नहीं। यद्यपि आज हमें भी गहन आत्मचिन्तन, आत्ममनन व गहन आत्मावलोकन की अत्यधिक आवश्यकता है। समाज में व्याप्त समस्याओं के कारणों तथा उनके निवारण के उपायों पर गहन चिन्तन करने की आवश्यकता है। आर्यसमाज महर्षि के व्यापक राष्ट्रवाद, समग्र समाजवाद व सुलझे अध्यात्मवाद के पावन सन्देश को कैसे जन-जन तक पहुंचा सकता है? धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक दासता की जंजीरों को कैसे तोड़ा जा सकता है? किस प्रकार समाज में व्याप्त पाखण्ड, अन्धविश्वास, भेदभाव जैसी असंख्यों कुरीतियों को मिटाया जा सकता है? उपरोक्त प्रश्नों का हम सबको मिलकर समाधान खोजने की आवश्यकता है। आज का युवा सबसे अधिक बुराइयों का शिकार है। आर्यसमाज का दायित्व है कि युवाओं को बुराइयों के भंवरजाल से निकाला जाए। आर्यसमाज युवाओं की आत्मा है और युवा आर्यसमाज का शरीर है। दोनों में अन्योऽन्याश्रित सम्बन्ध है।आर्यसमाज और युवा दोनों समाज व राष्ट्र के बल हैं। जिस राष्ट्र व समाज के पास बल होता है, वही समाज, राष्ट्र आन्तरिक अथवा बाह्य समस्याओं तथा अन्दर और बाहर के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है और वेद का भी आचार्य को, शिष्य को, राजा को, प्रजा को, गृहस्थी को, संन्यासी को, वानप्रस्थी को, राष्ट्र और समाज को, वृद्ध को और युवा को यह आदेश है - "बलमुपास्व" अर्थात् हे मनुष्य, हे समाज, हे-राष्ट्र! यदि समस्याओं पर, संकटों पर शत्रुओं पर तू विजय प्राप्त करना चाहता है, तो बल की उपासना कर। बल की उपासना करने वाला ही अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। हम ऐसी युवा पीढ़ी के निर्माण का संकल्प लें, जो चरित्रवान् हो। चरित्रवान् युवा ही राष्ट्र की, समाज की, परिवार की और संगठन की असली शक्ति है। आर्यसमाज की स्थापना का दिवस ८ अप्रैल हम सब आर्यों के लिए प्रेरणा दिवस है। इस दिन को हम कर्त्तव्य-स्मरण-दिवस के रूप में मनाते हुए नये उत्साह के साथ, दृढ़ संकल्प के साथ समाज की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करते हुए अपने आपको ऋषि का सच्चा अनुयायी साबित करें और अपने धर्म का पालन करें जैसा कि ऋषिवर का हमको सन्देश भी है कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

□□

वेद ईश्वरीय ज्ञान : अकाट्य युक्तियाँ!

(रामनिवास गुणग्राहक, भरतपुर मो0:-0759789499)

महर्षि देव दयानन्द सरस्वती के कार्यक्षेत्र में कदम रखने से पूर्व धार्मिक क्षेत्र में किसी बात को कहने व मान्यता को मनवाने के लिए किसी धर्मग्रन्थ में होना या किसी धर्माचार्य द्वारा कहीं बोल देना ही प्रामाणिक माना जाता था। किसी कथन-वचन व सिद्धान्त आदि के लिए तर्क व युक्तियों की आवश्यकता धार्मिक क्षेत्र में थी ही नहीं। आज स्थिति यह है कि विश्व पुस्तक मेले में श्रद्धेय डॉ. धर्मवीर जी व श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु के साथ भ्रमण करते हुए सऊदी अरब के प्रकाशन एवं इल्मी रिसर्च विभाग की ओर से प्रकाशित 'इस्लाम के सिद्धान्त और उसके मूल आधार' पुस्तक में इस्लाम को सच्चा सिद्ध करने के लिए पुस्तक के लेखक डॉ. मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिल सालेह अस-सुहैम को दस कसौटियों पर खरा सिद्ध करने का प्रयास करना पड़ा। यह अलग बात है कि लेखक महोदय ने सन् १८६३ में शिकागो विश्व धर्म सममेलन में निर्धारित निष्पक्ष व न्याय की अवधारणा पर खरी सिद्ध होने वाली कसौटियों जैसी कसौटियाँ न रखकर केवल इस्लाम को सच्चा धर्म सिद्ध करने वाली कसौटियाँ रखी हैं। मजे की बात तो यह है कि लेखक ने जिन कुछ ही न्यायपूर्ण कसौटियाँ रखने का प्रयास किया हैं, वहीं उन पर इस्लाम को खरा सिद्ध करना उनके लिए भी खींचतान बनकर रह गया है। जैसे चौथी कसौटी रखी है- 'उसका एक हिस्सा दूसरे हिस्से के विपरीत और विरुद्ध न हो।" आठवीं- 'वह अच्छे चरित्र व नैतिकता और अच्छे कृत्यों जैसे-सच्चाई, न्याय, ईमानदारी, हया (शर्म, लज्जा) पवित्रता और उदारता की ओर आमंत्रित करे, तथा अनैतिकता, और बुरे कृत्यों जैसे-माता-पिता की नाफरमानी (अवज्ञा) और हत्या से मनाही करे, तथा व्यभिचार, झूठ-अत्याचार, आक्रामकता, कञ्जूसी और पाप को हराम ठहराए।"

दसवीं में पुनः 'वह सच्चाई और रहनुमाई करे और झूठ से सावधान करे, मार्गदर्शन का निर्देश दे और गुमराही से घृणा करे..."। आदि की चर्चा है।

हम यहाँ इस्लाम व कुरान की समीक्षा या समालोचना करना नहीं चाहते। जिस आर्यपुरुष ने सत्यार्थ प्रकाश का चौदहवाँ समु. एक बार पढ़ लिया, वह डंके की चोट पर कहेगा, कुरान हमारे विद्वान् लेखक की इन कसौटियों पर खरा सिद्ध नहीं किया जा सकेगा। हमारा तो यह सब प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह दिखाना मात्र था कि विश्वभर के धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक मान्यताओं को कसौटियों पर कसने, तर्कों व युक्तियों से सत्य सिद्ध करने का जो प्रयास दिखता है, उसका बीजारोपण ऋषि दयानन्द की ही देन है। क्योंकि महर्षि ने अपनी हर बात को सत्य-न्याय के साथ तर्क व युक्ति की तुला पर तौल कर कहा है। धर्म और धर्मग्रन्थ के सम्बन्ध में महर्षि की मान्यताएँ सत्य, न्याय, तर्क व युक्तियों के साथ-साथ वैज्ञानिकता व मानवता के मापदण्डों पर भी पूर्णतः खरी सिद्ध होती हैं! हम आर्यों का कर्त्तव्य बनता है कि हम पूरी शक्ति-सामर्थ्य व बौद्धिक क्षमता के साथ महर्षि की मान्यताओं को समझने-समझाने, मानने-मनवाने और उनके अनुरूप व्यवहार करने-करवाने में अपना तन, मन, धन समर्पित कर दें। हम केवल पढ़ने के लिए पढ़ना, लिखने के लिए लिखना, बोलने के लिए बोलना, सुनने के लिए सुनना की प्रवृत्ति से आगे बढ़कर इन सबको जीवन से जोड़कर व्यवहार के धरातल पर इनका सदुपयोग करके देखें, तो हमारा सदन, समाज व संसार स्वर्ग बन जाएगा। हमने यदि ऋषि के ग्रन्थों को मनोयोग से, कुछ सीखने, समझने व प्रेरणा लेने की भावना से पढ़ा होता, तो विद्या के साथ-साथ कर्त्तव्यनिष्ठा की भी प्राप्ति अवश्य होती।

ग्यारहवें समु. में एक स्थान पर ऋषिवर लिखते हैं-

नवीन वेदान्ती- क्या तुम वशिष्ठ, शंकराचार्य आदि और निश्चलदास पर्यन्त से अधिक पण्डित हो? उन्होंने जो लिखा है, सो विचार करके लिखा है, वे तुमसे बड़े पण्डित थे।

सिद्धान्ती- तुमको क्या दीखता है?

नवीन- हमको तो वशिष्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक दीखते हैं।

सिद्धान्ती- तुम विद्वान् हो व अविद्वान्?

नवीन- हम भी कुछ विद्वान् हैं।

सिद्धान्ती- अच्छा तो आओ, वशिष्ठ, शंकराचार्य और निचलदास के पक्ष का हमारे सामने स्थापन करो, हम खण्डन करते हैं। जिसका पक्ष सिद्ध हो, वही बड़ा है। जो उनकी और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती, तो तुम उनकी युक्तियाँ लेकर हमारी बात का खण्डन क्यों न कर सकते? (ऐसा कर सको) तब तो तुम्हारी और उनकी बात माननीय होवे।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द यह मानते थे कि हम जिस विचारधारा व संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं, वह चाहे कितनी भी श्रेष्ठ, उत्तम व कल्याणकारी क्यों न हो, लेकिन इतिहास के जिस कालखण्ड में भी हम उसके सिद्धान्तों का तर्क व युक्तियों के साथ स्थापन न कर सकेंगे, उस कालखण्ड का विवेकशील वर्ग उस विचारधारा व संस्कृति का बहिष्कार कर देगा। स्पष्ट सी बात है कि सत्य सनातन वैदिक धर्म के सतत् विस्तार के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हमारी प्रत्येक पीढ़ी वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का ऐसा तलस्पर्शी ज्ञान रखने वाली हो कि संसार के विवेकशील, जिज्ञासु व तर्कशील जनमानस की शंकाओं, जिज्ञासाओं व उनके प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देकर उन्हें वैदिकधर्म के प्रति आकर्षित कर सके। जो भी पीढ़ी ऐसा न कर सकेगी, वह वैदिकधर्म को आगे जीवित नहीं रख पायेगी। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखकर हम आर्यों को चाहिए कि आज जैसे पुराण, कुरान व बाइबिल वाले अपने-अपने ग्रन्थ-पन्थों के प्रचार-प्रसार के लिए दीर्घावधि योजनाएँ बनाकर काम कर रहे हैं, ऐसे में हमें भी परमपिता-परमात्मा के वेदज्ञान के योग्य प्रतिनिधि बनकर वैदिक धर्म के झण्डे को इन सबसे ऊँचा बनाये रखने के लिए सतत् पुरुषार्थ करते रहना चाहिए! ऐसा करने के लिए यदि सबसे पहला कोई कर्त्तव्य है, तो वह है- भारत-भर के सब आर्यों को संगठन का मूल्य समझाना। आर्यसमाज के जीवन-मरण का प्रश्न आज कोई है तो वह है- संगठन। हमारे पास विद्वानों की कमी नहीं, संसाधनों की समस्या नहीं, कार्यकर्त्ताओं की कमी नहीं, उत्साह, उमंगों व कुछ कर गुजरने की भावना का भी अभाव नहीं, लेकिन एक संगठन के न होने से सब कुछ निर्जीव सा पड़ा है। किसी कवि ने लिखा है-

"वह लाठी भी है काम की, जिसकी मिली हो रग से रग!

वह तोप भी बेकार है, जिसके पुर्जे हों अलग-अलग।।"

सुधी आर्यजन इस पर गम्भीरता से विचार करके व्यवहार करने की दिशा में कदम उठायें। इसे प्राथमिक कर्त्तव्य स्वीकारें!!

वेद ईश्वरीय ज्ञान है, इस पर बहुत लिखा-पढ़ा व कहा-सुना जाता रहा है और ऐसा होते रहना भी चाहिए। हम आज कुछ नये ढंग से विचार करना चाहते हैं। मत-पन्थों की दुनियाँ में यह देखा जाता है कि प्रत्येक मत व पन्थ का एक धर्मग्रन्थ होता है। प्रत्येक धर्मग्रन्थ में चाहे वो स्वयं को ईश्वरीय ज्ञान घोषित करता हो, फिर भी उसमें अपने से पूर्ववर्ती किसी ईश्वरीय ज्ञान के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। किसी भी मत-पन्थ के संस्थापक कहे जाने वाले महापुरुष ने कभी स्वयं को धर्म (मत-पन्थ) का संस्थापक न कहकर मात्र धर्मसुधारक ही बताया है। ऐसे में धर्म व धर्मग्रन्थ होने का कोई

दावा करे, किसी ग्रन्थ को ईश्वरीय ज्ञान घोषित करे, तो वह व्यक्ति या समुदाय प्रश्नों से पीछा नहीं छुड़ा सकता। प्रश्न यह है कि परमात्मा द्वारा दिये गये ज्ञानों में स्वयं ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से लेकर उसकी न्याय व्यवस्था, उसकी भक्ति-उपासना आदि के सम्बन्ध में परस्पर विरुद्ध बातें क्यों पाई जाती हैं? कुरान-बाइबिल आदि को पढ़कर संसार का कोई बुद्धिमान ईश्वर के बारे में कोई बुद्धि सम्मत राय बना सकता है? यहाँ हम महर्षि दयानन्द का वेदोक्त मन्तव्य प्रकट करना चाहते हैं। ऋग्वेद का भाष्य करते हुए महर्षि वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने में एक अकाट्य युक्ति देते हुए लिखते हैं- "जिस ईश्वर ने प्रकाश किये हुए वेदों से जैसे अपने स्वभाव, गुण और कर्म प्रकट किये हैं, वैसे ही वे सब लोगों को जानने योग्य हैं। क्योंकि ईश्वर के सत्य स्वभाव के साथ अनन्त गुण और कर्म हैं, उन को हम अल्पज्ञ लोग अपने सामर्थ्य से जानने को समर्थ नहीं हो सकते। तथा जैसे हम लोग अपने-अपने स्वभाव, गुण और कर्मों को जानते हैं, वैसे औरों का उनको जानना कठिन होता है। इसी प्रकार सब विद्वान् मनुष्यों को वेदवाणी के बिना ईश्वर आदि पदार्थों को यथावत् जानना कठिन है। इसलिए प्रयत्न से वेदों को जान के उनके द्वारा सब पदार्थों से उपकार लेना तथा उसी ईश्वर को अपना इष्टदेव और पालन करनेहारा मानना चाहिए।" (ऋ. १.६.४)

यहाँ ऋषिवर ने जो युक्ति दी है, वह किसी प्रश्न और जिज्ञासा के लिए अवकाश नहीं छोड़ती। युक्ति बहुत ही सरल एवं व्यावहारिक है। सब जानते और मानते हैं कि मेरे बारे में जितना मैं जानता हूँ, उतना कोई दूसरा नहीं जानता। मेरे माता-पिता हों, चाहे पत्नी-पुत्र व मित्र आदि, जिनके साथ मैं दिन-रात रहता, खाता-पीता व अन्य व्यवहार करता हूँ, वे भी मेरे बारे में उतना नहीं जानते, जितना कि मैं मेरे बारे में जानता हूँ। यह युक्ति संसार के हर मनुष्य पर साक्षात् घटती है! ऋषिवर कहते हैं- "ठीक इसी प्रकार से परमात्मा के बारे में जितना परमात्मा जातना है, उतना कोई दूसरा नहीं जान सकता!" परमात्मा का स्वभाव सत्य है, सत्य अथाह है। परमात्मा के गुण और कर्म अनन्त हैं, ऐसे परमात्मा को हम अल्पज्ञ जीव स्वसामर्थ्य से, बिना परमात्मा के जनाये नहीं जान सकते। विचार करने वाली बात यह भी है कि परमात्मा द्वारा वेदज्ञान दिये बिना हम परमात्मा व संसार के पदार्थों का सत्यज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होते, तो परमात्मा को वेदज्ञान देने की क्या आवश्यकता रहती?

तैत्तरीय ब्राह्मण के ऋषि लिखते हैं- 'यो मनुष्यो वेदार्थान् न वेत्ति, स नैव बृहन्तं परमेश्वरं धर्मं विद्या समूहं वा वेत्तुमर्हति।" (३.१२.६.७)। अर्थात् जो मनुष्य वेदों के सत्य-अर्थ को नहीं जानता, वह महान् परमेश्वर को, धर्म को और विद्या-समूह को जानने में समर्थ नहीं हो सकता! चूँकि वेद के अतिरिक्त जितने भी ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान जाने और माने जाते हैं, उनमें से कोई भी परमात्मा के बारे में निःसंन्देह, सन्तोषजनक ज्ञान नहीं देता। न किसी अन्य ग्रन्थ में धर्म का सच्चा, सटीक व सर्वमान स्वरूप ही मिलता है और न विद्या-विज्ञान की सम्पूर्ण जानकारी वेद के अतिरिक्त किसी दूसरे ग्रन्थ-पन्थ में प्राप्त होती है। मानव के जीवन में काम आने वाली, यहाँ तक कि लोक-व्यवहार की विद्या भी किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं है। वेद के माध्यम से परमात्मा का सच्चा ज्ञान, धर्म का सच्चा स्वरूप और विद्या-विज्ञान के रहस्य ईश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही मनुष्य को प्रदान कर दिये, उसके रहते हुए ईश्वर को कौन सी कमी दूर करने के लिए बार-बार ज्ञान देने की आवश्यकता पड़ गई? परमात्मा ने पहला ज्ञान देते समय वह कमी क्यों रहने दी? इन सब तथ्यों, तर्कों व युक्तियों के आलोक में बड़ी सरलता व सफलता के साथ डंके की चोट कहा जा सकता है कि एकमात्र वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

❑❑

हाय! दिनकर जी क्या लिख गये!

(राजेशार्य आट्टा, 09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! देश में जबसे मोदी सरकार आई है, असहिष्णुता का वातावरण बन गया है। माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी का प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठना विपक्ष से सहन नहीं हो रहा है। ये वही लोग हैं, जिनसे सत्ता में रहते हुए सेलुलर (काला पानी) जेल में लगी वीर सावरकर के नाम की पट्टिका सहन नहीं हुई और सत्ता से बाहर आने पर संसद भवन में वीर सावरकर का चित्र लगना सहन नहीं हुआ। देश की अधिकतर जनता या तो अज्ञानी है या स्वार्थी है, जो हिन्दू असहिष्णुता का नाम लेकर देश छोड़ने की धमकी देने वाले फिल्म कलाकारों को सिर आँखों पर बैठाती है। इस असहिष्णुता के नाटक के पीछे साजिश यह है कि बार-बार ऐसा कहकर हिन्दुओं को वास्तव में ऐसा सहिष्णु (स्वाभिमानशून्य व दब्बू) बना दिया जाए कि वे किसी भी अनुचित कार्य का विरोध न करें अर्थात् जौंक हमारे शरीर का खून चूसे और शान्त रहने के लिए कहे। हमारे आह करते ही देश का वातावरण अशान्त हो जाता है। कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जी के शब्दों में कहूँ तो-

सुख समृद्धि का विपुल कोष, संचित कर कल, बल, छल से,

किसी क्षुधित का ग्रास छीन, धन लूट किसी निर्बल से।

सब समेट, प्रहरी बिठला कर, कहती कुछ मत बोलो,

शान्ति-सुधा बह रही, न इसमें, गरल क्रान्ति का घोलो।

हिलो-डुलो मत, हृदय रक्त अपना मुझको पीने दो,
अचल रहे साम्राज्य शान्ति का, जियो और जीने दो।

कांग्रेस के शासन (२०११) में जब अल्पसंख्यक सुरक्षा के नाम से हिन्दुओं के दमन (विनाश) करने वाला कानून लागू किया जा रहा था, तब ये कहाँ सो रहे थे? कश्मीरी हिन्दुओं को गोलियों से भूना गया व डरा- धमकाकर लाखों हिन्दुओं को भगा दिया गया, तो किसी को कोई तकलीफ नहीं हुई। संसद में आर्य-दलित (आर्य विदेशी हैं व हम दलित यहाँ के आदिवासी हैं) की राजनीति करने वाले कांग्रेसी नेता के कथन का विरोध करने की हिम्मत किसने दिखाई? हिन्दू पक्ष भी मौन रहा। इस अपराध का दण्ड किसे दिया जाए, जब भारत के प्रथम प्रधानमंत्री ही दृढ़तापूर्वक इस प्रचार में जुटे हुए थे। अपनी सभी पुस्तकों में उन्होंने आर्यों को विदेशी लिखा है। यहाँ तक कि अपनी ८-९ वर्ष की बेटी (इन्दिरा) को लिखे पत्रों में भी वे यही लिखते थे। यह अलग बात है कि आर्यों को विदेशी व सिन्धु घाटी के द्रविड़सभ्यता सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण उनके पास नहीं था (केवल अंग्रेजों के कथन थे)। यदि होते तो वे उसे दिनकर जी को भी दे देते और दिनकर जी को यह न लिखना पड़ता कि द्रविड़ों को आर्यों से भिन्न मानना भ्रामक और मूर्खतापूर्ण है।

अपने अतीत को याद रखने के कारण ही यहूदियों ने इज्राइल को सारे विश्व में स्वाभिमान का पर्याय बना दिया और मातृभाषा से प्रेम के कारण संसार से मिटने वाली हिब्रू भाषा को पुनर्जीवित कर लिया। जबकि भारत में उल्टा हुआ। यहाँ स्वतंत्रता के बाद विश्व की सबसे समृद्ध भाषा संस्कृत को मृतभाषा बना दिया और इस देश के बहुसंख्यक हिन्दुओं का पुराना नाम (आर्य) व देश का पुराना नाम (आर्यावर्त्त) भी भुला दिया गया।

दुर्भाग्य से देश का प्रधानमंत्री यह काम कर रहा था। उसी का यह परिणाम हुआ कि आर्यों को विदेशी, आक्रमणकारी व माँसाहारी कहने पर हिन्दुओं ने कोई विरोध नहीं किया, क्योंकि उन्होंने सोचा कि आर्य नाम की कोई जाति होगी, जिनसे हमारा कोई वास्ता नहीं है। डॉ० अम्बेडकर के कहने पर भी संस्कृत को राष्ट्रभाषा नहीं बनाया गया और हिन्दी में भी अरबी-फारसी के शब्द फँसाकर उसे हिन्दुस्तानी बना दिया। फलतः हिन्दी को दक्षिण वालों (तथाकथित द्रविड़ों) का विरोध झेलना पड़ा। सोचिये, आर्य-द्रविड़ का प्रचार करने वालों ने देश का क्या भला किया?

उसी का परिणम है कि २००६ ई. तक आते-आते हम देशभक्ति और देशद्रोह का अन्तर ही भूल गये। गुजरात के बड़े नेताओं (श्री नरेन्द्र मोदी आदि) को मारने के लिए आये पाकिस्तानी आतंकवादियों के साथ रहने वाली लड़की इशरत जहाँ के मारे जाने पर (१५ जून २००४) लश्कर के 'गजवा टाइम्स' ने उसे शहीद घोषित कर शाबासी दी थी। पर हमारे कुछ नेता ही उसे 'मासूम बच्ची' प्रचारित कर राजनीति की रोटियाँ सेकने लगे। फिर तो लश्कर ने भी अपनी गलती (?) सुधार ली (२ मई २००७)। गृहमंत्री ने ३० सितम्बर २००६ को उसे आतंकवादी घोषित हलफनामा ही बदलवा दिया था। ऐसी नीचता भरी 'उदारता' भारत के सेक्युलरों के अतिरिक्त संसार में और कहाँ मिल सकती है? तभी तो भारत का खाकर विदेशों की जय बोलने वाले नमकहरामों ने मुम्बई हमले के आतंकवादी को 'बेचारा कहकर क्रूर याकूब मेमन की फाँसी का विरोध किया।

तन्नूर (केरल) में सी.पी.एम. की हत्यारी राजनीति अब तक (१६८० ई. से) आर.एस.एस. के सैकड़ों कार्यकर्ताओं के खून से स्नान कर चुकी है। उसके विरोध में एक भी शब्द न बोलने वाले मजहबी सांसद राष्ट्रसेवा में तत्पर संगठन (आर.एस.एस.) की तुलना संसार के क्रूरतम आतंकवादी संगठन (आई.एस.आई.एस.) से कर रहे हैं। मजहब का नाम लेकर 'वन्दे मातरम्' का विरोध करने वाले नेता अब भारत माता की जय बोलने से भी मना करने लगे हैं। आतंकवादी अफजल में भी 'लाल सलाम' वालों को भगतसिंह दिखाई देने लगा है। इसीलिए जे.एन.यू. दिल्ली में उसे श्रद्धाञ्जलि दी गई। भारत के भारी वेतन पर पलने वाले वहाँ के प्रोफेसरों ने चीन-पाक के समर्थन में भाषण दिये। छात्रों (P.H.D.) के 'इंडियन आर्मी-मुर्दाबाद' नारे सुनकर शहीदों के परिवार खूनी आँसू रोये होंगे, पर 'बड़े नेता' वहाँ भी नारेबाजों के समर्थन में खड़े हो गये और मीडिया ने देशद्रोही छात्रों को 'हीरो' बना दिया। हाय! क्या देशभक्ति सेना और पुलिस के जवानों के लिए ही रह गई है? जब देशद्रोह करके इतना मान-सम्मान मिलता हो, तो फिर क्यों कोई जवान शहीद होने की गलती करेगा! फिर तो यही होगा-

जब गुनाहगारों पै देखी रहमते-परवरदिगार।
बेगुनाहों ने पुकारा, हम गुनाहगारों में हैं।।

'आर्य-द्रविड़' इस विषय पर 'हमने क्या खोजा' लेखों में पहले लिखा जा चुका है। स्वयं दिनकर जी ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में अपनी और अपने मित्र व साथी नेहरू जी की मान्यता के विपरीत लिखा है, जो यथार्थ है। देखिये- "द्रविड़ों और आर्यों के मूल स्थानों के बारे में जितने भी सिद्धान्त प्रचलित हैं, वे सब अनुमान और अटकल पर आधारित हैं।" (पृ० १६)

"भारत को भी यह नहीं मानना चाहिए कि आर्य और द्रविड़ नाम दो प्रजातियों के हैं।... (आर्य) जो आर्यभाषा बोलते हैं। इसी प्रकार द्रविड़ शब्द भी भारत में प्रजातिवाचक नहीं, स्थानवाचक ही रहा है।... मनु ने द्रविड़ शबद का प्रयोग उन लोगों के लिए किया है, जो द्रविड़ देश में बसते थे।... हमारे पूर्वजों ने द्रविड़ शब्द का अर्थ प्रजाति नहीं रखा था और हमारे लिए

भी यही उचित है कि हम यूरोप से आये हुए प्रजातिवाद का जहरीला अर्थ अपने शब्दों में न ठूँसे।" (पृ० १८)

"अठारहवीं सदी तक भारत में किसी को भी इसका अनुमान नही था कि आर्य इस देश के मूल निवासी नहीं हैं अथवा यह कि आर्य और द्रविड़ दो हैं और दोनों के पूर्वज इस देश में बाहर से आये थे। तब सन् १७८६ ई० में सर विलियम जोन्स ने यह स्थापना रखी कि. ...।" (पृ० २१-२२)

"इससे इस बात पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है कि द्रविड़ों को आर्यों से भिन्न मानना कितना भ्रामक और मूर्खतापूर्ण है।" (पृ० ३७)

"संस्कृत साहित्य पर जितना ऋण उत्तर वालों का है, उतना ही ऋण दाक्षिणात्यों का भी है। उत्तर दक्षिण वालों का प्रश्न अभी हाल में उठा है। प्राचीन काल में सारा भारत संस्कृत को ही अपनी साहित्य भाषा मानता था।" (पृ० ३६)

फिर भी मित्रता व सम्मान के बोझ तले दबे दिनकर जी उपसंहार तक आर्यों को विदेशी लिखते रहे। अतः इस विषय में कुछ बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक लगता है-

१. यदि बाढ़ आदि किसी प्राकृत आपदा से सिन्धु सभ्यता के ये नगर नष्ट हो गये और बाद में सुरक्षित बचे लोगों ने उनके ऊपर पुनः नगर बसा लिये, तो वे पहले वालों के दुश्मन या विदेशी कैसे हो गये? क्या पुनः नगर बसाने के लिए विदेशियों का आना अनिवार्य है? फिर वर्तमान लोगों की और दबने वालों की बहुत सी परम्पराएँ समान क्यों हैं?

२. ''सिन्धु सभ्यता पर आक्रमण कर आर्यों ने इसे नष्ट किया'' इस कल्पना का प्रचार करने वाले मोर्हिमर ह्विलर को पुरातत्त्ववेत्ता श्रीधर वाकणकर ने आर्यों के आक्रमण प्रमाणित करने की चुनौती दी थी, वह निरुत्तर हो गया। जबकि उसकी बात को प्रमाण मानकर देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय व राम स्वामी पणिक्कर ने उत्तर भारत (आर्यों) के विरोध में आन्दोलन चलाया, जो ब्राह्मण शूद्र के रूप में बदल गया।

३. क्या यह संभव था कि कुछ आर्य समस्त उत्तर भारत के द्रविड़ों को मार भगा देते और उसे इस तरह आबाद कर लेते कि द्रविड़ों का कोई भी निशान शेष न रहे। कोई इतिहाकार यह तो बताए कि आर्यों ने द्रविड़ों के जिस देश पर अधिकार किया था, उसका क्या नाम था और द्रविड़ों ने अपने देश का नाम आर्यावर्त्त क्यों रखने दिया?

४. शक, हूण, मुस्लिम आदि आक्रमणकारियों ने मिनांडर, मिहिरगुल, सिकन्दर, कासिम, गजनवी, गोरी, तैमूर, बाबर, नादिर, अब्दाली आदि के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किये, इनका लिखित इतिहास है, पर कोई इतिहासकार आर्यों के आक्रमणकारी नेता का नाम तो बताए।

५. आर्य राम बनवास के समय दक्षिण भारत में गये, तो दक्षिण वालों (तथाकथित द्रविड़ों) ने उनका विरोध नहीं किया, अपितु उनकी सहायता की। और आज जिन्हें अलग-अलग जाति (वास्तव में मनुष्य) माना जाता है (वानर-हनुमान, सुग्रीव आदि; पक्षी-जटायु, सम्पाति; राक्षस- रावण, विभीषण आदि) इनके लिए रामायण में राम की तरह आर्य शब्द का प्रयोग हुआ है, द्रविड़ का क्यों नहीं?

६. यदि आर्यों ने द्रविड़ों पर विजय पाई थी, तो रामायण महाभारत आदि की तरह उस विजय का वर्णन करने के लिए कोई ग्रन्थ क्यों नहीं लिखा अथवा अपने किसी ग्रन्थ में उसका उल्लेख क्यों नहीं किया? और द्रविड़ों के कौन से प्राचीन ग्रन्थ में लिखा है कि वे उत्तर भारत में रहते थे और आर्यों ने उन्हें मार-पीटकर दक्षिण में भगा दिया? फिर भी दक्षिण वालों ने अपना साहित्य आर्यों की भाषा संस्कृत में क्यों लिखा?

७. क्या कारण है कि वर्तमान के तथाकथित द्रविड़ों का इतिहास अगस्त्य व कण्व आदि वैदिक ऋषियों से आरम्भ होता है? और दक्षिण के शंकराचार्य जैसे विद्वानों ने संस्कृत व वैदिक ग्रन्थों का प्रचार किया और उत्तर भारत में भी यह स्थापित किये। वे शंकराचार्य आज भी पूरे हिन्दूसमाज के लिए आदरणीय हैं और रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि राम-कृष्ण आदि आर्यों की भक्ति का प्रचार करते रहे।

८. आर्यों के प्राचीन साहित्य में उनकी विरोधी या समानता के रूप में कहीं भी द्रविड़ जाति का उल्लेख नहीं है। वहाँ तो आर्य (श्रेष्ठ आचरण-गुणवाचक) की तरह दस्यु (सामाजिक नियम तोड़ने वाला) शब्द मिलता है। वह भी गुणवाचक है, जातिवाचक नहीं। द्रविड़ तो स्थानवाची शब्द है। महाभारत में राजसूय यज्ञ से पूर्व सहदेव की दिग्विजय के समय द्रविड़ देश का वर्णन है- कृष्णा और पोलर नदियों के मध्यवर्ती जंगली भाग के दक्षिण में स्थित कोरोमंडल का समस्त समुद्री तट, जिसकी राजधानी कांची-कांजीवरम् थी (मद्रास से ४२ मील दक्षिण-पश्चिम में) उस स्थान के वासी होने से व्यक्ति भी द्रविड़ कहलाते थे। जैसे-पंजाब, बंगाल, बिहार के सभी लोग पंजाबी, बंगाली, बिहारी कहे जाते हैं।

९. भारत के राष्ट्रगान में 'द्रविड़' शब्द पंजाब, सिन्ध, गुजरात आदि की तरह स्थानवाची है, जातिवाचक नहीं।

१०. मनुस्मृति (१०-२२) में 'द्रविड़' शब्द जाति के लिए आया है, पर ये श्लोक प्रक्षिप्त हैं और उस समय जोड़े गये हैं, जब समाज में जन्मना विभिन्न जातियाँ बन गई थीं। संभवतः शुंग या गुप्तकाल में। फिर भी मनुस्मृति में वर्णित द्रविड़जाति आर्यों की विरोधी नहीं, अपितु आर्यों के ही एक वर्ण क्षत्रिय (क्षत्रिय व्रात्य) से उत्पन्न सन्तान के रूप में झल्ल, मल्ल, नट आदि की तरह है।

११. स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि की तरह डॉ० अम्बेडकर भी मानते हैं- "यह धारणा गलत है कि आर्य आक्रमणकारियों ने शूद्रों को जीता। आर्यों के बाहर से आने और यहाँ के मूल निवासियों को जीतने की कहानी के समर्थन में कोई प्रमाण मौजूद नहीं है। भारत ही आर्यों का मूल निवास स्थान था।" (डॉ० अम्बेडकर, राइटिंग एण्ड स्पीचेज, खंड ३, पृ०४२०)

अमेरिका के मानव वैज्ञानिक और पुरातत्त्ववेत्ता डॉ० जे० मार्क केनोयर का मानना है कि सिन्धु घाटी आर्यों की ही सभ्यता है। इसी तरह बहुत से देशी-विदेशी विद्वान् तथाकथित आर्य द्रविड़ जातियों व उनके परस्पर संघर्ष को झूठा सिद्ध कर चुके हैं। विश्वप्रसिद्ध मुस्लिम साहित्यकार अनवर शेख आर्यों के आक्रमण को बकवास घोषित कर चुके हैं। स्वतंत्रता के बाद भी अंग्रेजों की मान्यता का प्रचार क्यों हो रहा है, यह निम्नलिखित घटना से समझिये-

वैदिक विद्वानों(आचार्य उदयवीर व डॉ० फतह सिंह) ने मोहनजोदड़ों की खुदाई से प्राप्त सील (मुद्रा) पर अंकित एक चित्र को ऋग्वेद के मंत्र (१-१६४-२०) की व्याख्या बताया है, जिसमें प्रकृतिरूपी वृक्ष पर आत्मा और परमात्मा नाम के दो पक्षी बैठे हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) वृक्ष के फल खा रहा है, जबकि दूसरा केवल देख रहा है। इससे इन्होंने सिन्धु-सभ्यता को वैदिक-सभ्यता सिद्ध कर दिया, पर नेहरू सरकार ने इन्हें हतोत्साहित किया। डॉ० फतहसिंह ने सिन्धु लिपि के ४५ अक्षरों की खोज करके १९६५ ई० तक १५०० सिन्धु-मुद्राओं को पढ़ा और निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि सिन्धु-मुद्राओं की लिपि पूर्व ब्राह्मी है और भाषा वैदिक संस्कृत। वे सिन्धुलिपि के ओम, उमा, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण आदि वैदिक शब्दों को पढ़ सके। उनका यह भी कहना था कि उपनिषदों के अनेक विचारों को सिन्धु-मुद्राओं में चित्रित किया गया है।

डॉ० फतहसिंह पर दबाव डाला गया कि वे अपने अनुसन्धानात्मक निष्कर्षों में सिन्धु-सभ्यता को द्रविड़ सभ्यता ही सिद्ध करें। उन्होंने ऐसा नहीं किया, तो उन्हें राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के अध्यक्ष पद से हटा दिया गया। उन्होंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से आर्थिक सहायता माँगी, तो उन्हें उत्तर मिला कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के चिह्नों को वैदिक की बजाय द्रविड़ घोषित करो और यह सिद्ध करो कि ऋग्वेद में अशुद्धियाँ हैं। अतः इसका पुनर्लेखन होना चाहिए; तो अनुदान मिलेगा।

यह कोई राज्यसभा का सदस्य बनकर बयान बदलने वाला कवि नहीं, अपितु ऋषि दयानन्द की भट्टी में तपा राष्ट्रभक्त था। इन्होंने लिखा- ''यह काम मुम्बई का हरास इन्स्टीट्यूट कर ही रहा है। मैं न कर सकूँगा।"

पाठक पहले पढ़ चुके हैं कि ऐसा ही लालच अंग्रेजों के समय पं० भगवद्दत्त जी को दिया गया था और उन्होंने भी उसे ठोकर मारी थी, पर आजादी से पूर्व और बाद में सत्ता की प्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं आया। आजादी के बाद भी सच्चे इतिहास-लेखकों को दबाने और चाटुकारों को खरीदने का काम जारी है। फिर विद्यार्थी अतीत का सत्य जाने कैसे!

दिनकर जी ने नेहरू जी का समर्थन करते हुए लिखा है कि इस देश की संस्कृति व सभ्यता पर न तो आर्यों (हिन्दुओं) का अधिकार है, न मुस्लिमों का और न ईसाइयों का। अर्थात् यदि ईसाई व उनकी सभ्यता भारत में विदेशी हैं और यदि मुस्लिम और उनकी सभ्यता विदेशी हैं, तो आर्य और उनकी सभ्यता भी विदेशी हैं। स्थान व समय के अन्तराल के कारण होने वाली उत्तर व दक्षिण भारत की कुछ सांस्कृतिक भिन्नता के कारण वर्तमान हिन्दू संस्कृति को आर्य व द्रविड़ में बाँट दिया। और नेहरू जी ने अनावश्यक रूप से ईसाइयों व मुस्लिमों का पक्ष लेकर भारत की मूल पहचान- आर्यावर्त्त, आर्य, गोपालन, यज्ञ आदि को मिटाने का प्रयास किया। जिसके कारण हिन्दूवादी संगठनों ने उनका विरोध भी किया, तो दिनकर जी भी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए नेहरू जी के समर्थन में उतरे और लिखा-

"इस (हिन्दू-मुस्लिम) समस्या पर सबसे अधिक ध्यान पण्डित जवाहर लाल नेहरू का है। अकबर ने मुस्लिम आतंक से पीड़ित हिन्दुओं का पक्ष जिस वीरता से लिया था, जवाहरलाल जी उसी वीरता के साथ मुसलमानों का पक्ष ले रहे हैं। किन्तु अकबर की उदारता से जैसे मुसलमान चिढ़ उठे थे, वैसे ही पण्डित जी की उदारता बहुत से हिन्दुओं की दृष्टि में गलत समझी जा रही है।"

"भारत के मन को नवीन बनाने की दिशा में सबसे अधिक काम पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया है।" (पृ. ६२८, ६३३)

दिनकर जी ने सबसे अधिक गुस्सा आर्य और आर्यावर्त्त शब्द को पुनः प्रचारित करने वाले ऋषि दयानन्द पर उतारा है। इसलिए उनके सांस्कृतिक पुनर्जागरण के महान कार्य की उपेक्षा करके उन्हें केवल अपने तर्कों से इसाई व मुसलमानों को पछाड़कर हिन्दुत्व की रक्षा करने वाली 'खड्गधारी बाँह' तक सीमित रखा और रामकृष्ण परमहंस के अध्याय के आरम्भ में ऋषि दयानन्द को नीचा दिखाते हुए उनकी टिप्पणी लिखी। जबकि उचित तो यही है कि जिसके (महापुरुष के) विषय में अध्याय लिखा जा रहा है, उसके विषय में किसी अन्य विचारक की सम्मति दी जाए, न कि उसकी सम्मति अन्य के विषय में। वैसे भी आर्यसमाज के बाद परमहंस के अध्याय से पूर्व थियोसोफिकल सोसाइटी का अध्याय है। अतः परमहंस की टिप्पणी सोसाइटी के विषय में दी जाती न कि आर्यसमाज के विषय में।

दिनकर जी को आर्यावर्त्त, आर्य, वेद और यज्ञ से इतनी घृणा है कि आर्यावर्त्त नाम को गलत लिख दिया। आर्य शब्द को संकुचित कहा। यज्ञ को हिंसित (हिंसायुक्त) बता दिया। ऋषियों को माँसाहारी बना दिया। दक्षिण

वालों द्वारा उत्तर भारत के विरोध का कारण आर्य-आर्य और वेद-वेद चिल्लाना बता दिया। अर्थात् दक्षिण वालों के भारत-विरोधी आन्दोलन के कारण हैं- वेद प्रचार करने वाले ऋषि दयानन्द और उनके शिष्य (आर्यसमाजी)। दिनकर जी भूल गये, वेदों को कण्ठस्थ करने और शुद्ध व सस्वर पाठ करने वाले विद्वान् दक्षिण भारत में ही अधिक हैं। आज भी मीमांसा दर्शन पढ़ाने वाले विद्वान् दक्षिण भारत में ही अधिक हैं। सोमयाग जैसे महायज्ञ दक्षिण में ही अधिक होते हैं। फिर इनके कारण दक्षिण वाले उत्तर वालों का विरोध क्यों करते? आर्यसमाज की स्थापना भी तो दक्षिण (मुम्बई) में हुई थी।

अंग्रेजों और उनके मानसपुत्रों (भारतीयों) के षड्यंत्र से भ्रमित हुए दक्षिण भारत के लोग आज भले ही आर्य शब्द से घृणा करते हों, पर यह सत्य है किसी समय बाली द्वीप के लोग भी स्वयं को बड़े घमण्ड से आर्य कहते थे। बाद में भारतीयों को तरह उन्होंने भी हिन्दू नाम अपना लिया। पर वेद उपनिषद् रामायण, महाभारत आदि का सम्मान पहले की तरह करते रहे। पं० कन्हैयालाल आर्योपदेशक ने 'हमारी जापान यात्रा' में (१६३१ ई.) लिखा है कि बाली के राजागण अपना गोत्र देवगंग से बतलाते हैं, जो एक मजापहत राजकुमार था। मजापहत राजाओं की उत्पत्ति भारत के दक्षिणी भाग के राजाओं से मानी जाती है।" फिर दक्षिण वालों के आर्य होने में क्या सन्देह है! दिनकर जी की अन्य भ्रान्त धारणाओं की समीक्षा अगले अंकों में की जाएगी। सोचिए, यदि आर्यावर्त्त नाम गलत है, तो हिन्दुओं के संकल्प पाठ में आज भी क्यों प्रयोग किया जाता है।

□□

दयानन्द सन्देश के स्वामित्व आदि का विवरण

1.	प्रकाशन स्थान	:-	427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-110006
2.	प्रकाशन अवधि	:-	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:-	तिलक प्रिटिंग प्रेस, 2046, बाजार सीता राम, दिल्ली-6
4.	प्रकाशक	:-	धर्मपाल आर्य
	क्या भारतीय है?	:-	हाँ
	पता	:-	2 एफ, कमलानगर, दिल्ली-110007
5.	सम्पादक	:-	धर्मपाल आर्य
	क्या भारतीय है?	:-	हाँ
	पता	:-	2 एफ, कमलानगर, दिल्ली-110007
6.	स्वामित्व	:-	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट 427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-110006

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखा समस्त विवरण सत्य है।

मार्च, 2016

धर्मपाल आर्य
(प्रकाशक/सम्पादक)

क्या अपने घर, दुकान, कार्यालय व वाहनों पर नीम्बू-मिर्ची लटकाने की आवश्यकता है?

(डॉ. गंगाशरण आर्य,शाहबाद मोहम्मदपुर, नई दिल्ली-61,मो0:-9871644195)

हिन्दू कहे जाने वाले लोगों में अन्धविश्वास के आधार पर अन्धानुकरण करने की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा है। अक्सर शनिवार के दिन घरों के द्वार पर और वाहनों के आगे-पीछे, दुकान व कार्यालयों के सामने नीम्बू-मिर्ची लटके देखे जाते हैं। ये घर वाले, दुकान व कार्यालय वाले और गाड़ी वाले खुद खरीदने नहीं जाते हैं, बल्कि यह एक व्यवसाय करने वालों का फैलाया हुआ जाल है। नींबू-मिर्ची द्वार तक पहुँचाने वाले लोगों का कहना है कि आपके व्यापार पर, आपकी रोजी-रोटी पर या आपके बढ़िया मकान या भवन पर किसी की बुरी नजर नहीं लगेगी व आपके किसी भी काम में कोई रुकावट नहीं आएगी, आपका व्यापार खूब फले-फूलेगा, हर प्रकार के संकट से आपकी रक्षा होगी आदि-आदि। आइए! अब जरा विचार करते हैं कि उपरोक्त बातें मनघड़न्त हैं या वास्तव में इनका नींबू व मिर्ची से कोई सम्बन्ध है अथवा धर्म की आड़ में नित-नए टोटकों में उलझाकर हमारे अन्दर विचारशून्यता पैदा करके निकम्मे लोगों द्वारा धन बटोरने का धंधा है।

नींबू और मिर्ची शनिवार के दिन घरों व दुकानों पर काले धागे में बाँधकर लटकाने का प्रचलन न तो हमारी कोई धार्मिक मान्यता है और न ही इसका हमारे व्यापार आदि की बढ़ोतरी से कोई लेना-देना है, बल्कि उपरोक्त भ्रम फैलाकर पाखण्डियों द्वारा हमारी मानसिक शक्ति को जाँचा जाता है कि आज भी इस वैज्ञानिक युग में हम उनके द्वारा फैलाए गए जाल में फँस सकते हैं या नहीं। कुछ अमीर लोगों द्वारा काले धागे में बँधी हुई नींबू व मिर्ची अपनी गाड़ियों, घर व कार्यालयों में लटकाना अब फैशन भी बन गया है, जिनकी देखा-देखी अन्य सामान्य जन भी बिना मनन-विचार करे ही उनकी नकल करने लगते हैं। वह सोचते हैं कि शायद ये नीम्बू मिर्ची लटकाकर ही इस मुकाम तक पहुँचे हैं। वे जरा भी बुद्धिपूर्वक विचार नहीं करते कि यहाँ तक पहुँचने के लिए इन लोगों ने कितनी मेहनत की होगी, कितना परिश्रम किया होगा। केवल भेड़चाल की तरह अन्धानुकरण करते चले जाते हैं। ऐसे लोगों को देखकर अकबर-बीरबल की एक घटना याद आती है, जो इस प्रकार हैः-

"एक दिन अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा कि बताओ बीरबल दुनियां में मूर्खों की संख्या अधिक है या बुद्धिमानों की। बीरबल ने कहा हुजूर, दुनियाँ में मूर्खों की संख्या अधिक है। अकबर ने कहा- इसको सिद्ध करके दिखाओ। बीरबल ने कहा बादशाह सलामत, इसके लिए एक सप्ताह का अवकाश दीजिए। अकबर ने कहा ठीक है, आपको एक सप्ताह का समय इसके लिए दे दिया गया है। बीरबल ने अवकाश पाते ही एक चतुर जूता बनाने वाले से एक बहुत ही सुन्दर सितारों से जड़ा हुआ सुनहरी सजावट से युक्त सामान्य जूतों के आकार से बहुत बड़ा जूतों का एक जोड़ा तैयार कराया। बीरबल ने एक दिन उस जोड़े में से एक जूता किसी चतुर चालाक व्यक्ति के द्वारा शहर की जामा मस्जिद में रखवा दिया। प्रातःकाल होने पर मस्जिद में इमाम ने जब उस असाधारण जूते को देखा, तो सोचने लगा इतना बड़ा और बेशकीमती जूता किसी इंसान का तो नहीं हो सकता। जरूर रात में यहाँ अल्लाहताला तशरीफ लाए हैं और अपने आने की शोहरत के लिए निशानी के रूप में अपना एक जूता छोड़कर चले गए हैं। उस विचित्र सुनहरी जड़ाउ जूते को देखने के लिए मस्जिद में दर्शकों की बड़ी भीड़ एकत्रित होती गई। इमाम ने अपनी सोच को लोगों के सामने दोहरा दिया। बस फिर क्या था, दर्शक बारी-बारी से लगे जूते को चूमने सिर पर रखने तथा श्रद्धा से स्पर्श करने। सारी

दिल्ली में सैलाब उमड़ने लगा। मस्जिद के इमाम ने जनता को सुझाव दिया कि क्यों न जूते को पालकी में रखकर सारे शहर में जुलूस के रूप में घुमा दिया जाय ताकि आवाम (शहर) के लोग भी अल्लाह के जूते का दीदार कर सकें।

तुरन्त इमाम के हुक्म के मुताबिक एक पालकी को सुन्दर रेशमी वस्त्रों तथा फूलों से सजाकर उसमें जूते को रखकर नगर में घुमाया जाने लगा, तो पालकी को कन्धे पर उठाने वालों में होड़ लग गई कि खुदा के जूते को उठाने का सबाब कौन हासिल करे। अत्यन्त सज-धज के साथ जूता रखी पालकी का जुलूस चल रहा था। पालकी के आगे-आगे अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। लोगों के 'अल्लाह हु अकबर' के नारों से धरती आसमान गूँज रहे थे। किसी ने अकबर को भी अल्लाहताला के जूते के जुलूस की सूचना दी, तो अकबर भी खुदा के जूते का दीदार करने के लिए ललायित होकर अपने कुछ दोस्तों के तथा पारिवारिक जनों के साथ जुलूस की और दौड़ पड़ा तथा पालकी के पास जाकर पालकी से जूते को उठाकर चूमकर जब सिर पर रखने लगा, तो भीड़ में से निकल कर अपनी बगल में से दूसरे जूते को निकालकर बीरबल ने कहा- जहाँपनाह! यह जूता तो मेरा है, देखिए न इसके साथ का यह दूसरा जूता मेरा पास है। बस फिर क्या था। अकबर उस जूते को देखकर मन में अत्यन्त लज्जित हुआ। तभी बीरबल ने तपाक से कहा, हुजूरे आला, अब तो आप समझ गए होंगे कि दुनियाँ में मूर्खों की संख्या ज्यादा है।"

मानव जीवन का उद्देश्य है कि अज्ञान को दूर करके शुद्ध ज्ञान को प्राप्त कर अपने लोक और परलोक को सुधारें। हमें जितने भी दुःख संसार में होते हैं, उन सबका कारण अज्ञान है। इन देखा-देखी नींबू-मिर्ची टाँगने वालों का भी यही हाल है। बिना कुछ सोचे-विचारे ही उनका ये कहना कि नींबू-मिर्ची लगाने से व्यापार में बढ़ावा होता है या बरकत होती है- यह शत-प्रतिशत गलत है, कोरा अन्धविश्वास है, अन्धश्रद्धा है। ऐसा कुछ नहीं होता। व्यापार बढ़ाने के लिए तो सैल्समैन के गुणों को सीखना पड़ता है। अच्छा सैल्समैन या व्यापारी तो अपनी मिट्टी को भी सोने के भाव में बेच देता है जबकि बिना सीखे मात्र माल भरकर व्यापार करने वाला वो सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, चाहे जितनी नींबू-मिर्ची लटका ले। किसी भी आर्षग्रन्थ (वैदिक साहित्य) में तो क्या किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ में भी ऐसा कहीं नहीं लिखा कि नींबू-मिर्ची लटकाने से व्यापार में इजाफा होता है। नींबू-मिर्ची लटकाने से कोई लाभ होने वाला नहीं है। हाँ! नींबू और मिर्ची का प्रयोग करके जहाँ हम अपने भोजन को स्वादिष्ट बना सकते हैं, वहीं इनके सेवन से होने वाले लाभ का फायदा हम ले सकते हैं, जिनका जिक्र आगे किया जाएगा। लेकिन कमजोर मानसिकता के कारण हम इनके जाल में फँसते ही चले जाते हैं। जरा विचार करके बताओ कि क्या गाड़ी बिना ईंधन के चल सकती है? यदि आपकी गाड़ी खराब हो गई है, तो क्या बिना मैकेनिक के उस पर सिर्फ नींबू-मिर्ची लटकाने से वह ठीक हो जाएगी? जो लोग रोजाना नींबू-मिर्ची अपनी गाड़ी पर लटकाते हैं, क्या उनकी गाड़ी कभी खराब नहीं होती? क्या उनकी गाड़ी कभी दुर्घटनाग्रस्त नहीं होती? ऐसा नहीं है क्योंकि गाड़ी एक जड़ वस्तु है इसलिए कभी भी उपरोक्त परेशानियाँ वाहन चालक को झेलनी पड़ सकती हैं, जिसके लिए वाहन-चालक और परिस्थितियाँ ही जिम्मेदार होती हैं। जैसे किसी दुर्घटना में गाड़ी क्षतिग्रस्त हो गई, उसमें थोड़ी बहुत खराबी आ गई, तो उसे मैकेनिक ही तो ठीक कर सकता है, नींबू-मिर्ची लटकाने का इसमें क्या लाभ? गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हुई चालक की असावधानी के कारण, तो इसमें नींबू-मिर्ची क्या करेंगे? लेकिन कुछ अवैदिक दृष्टिकोण रखने वाले लोग ऐसा कहते हैं कि गाड़ी को किसी की नजर लग गई होगी, नजर न लगे इसलिए तो नींबू-मिर्ची लटकायी जाती है, तो जरा इनसे पूछने वाला कोई हो, तो अवश्य पूछना कि शोरूम में

नए-नए मॉडल की अनेक गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं, जिन्हें हजारों ग्राहक हर रोज देखने आते हैं और अच्छी गाड़ियाँ देखकर उनकी खूब प्रशंसा करते हैं, खूब हाय-हाय करते हैं कि हाय कितना सुन्दर मॉडल है लेकिन क्या उनकी नजर लगी है कभी शोरूम में खड़ी किसी गाड़ी को, क्या कभी शोरूम में खड़ी-खड़ी किसी गाड़ी को कोई खरोंच तक भी आई? नहीं ऐसा कभी नहीं होता। हमें बुरी नजरों से लुकने-छिपने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि बुराई नज़रों में नहीं होती मन में होती है और नजरें हमें सामने वाले व्यक्ति के मन में हमारे प्रति कितना मैल है, इसका एहसास उसी प्रकार कराती हैं, जैसे बालक को घर में पिता के पहुँचने पर पिता की आँखों में छलकते प्यार व गुस्से का अनुभव कराती हैं और बालक अपने पिता के मूड को पहचान कर उसके अनुरूप ही व्यवहार करता है। अतः हमें तो ऐसी नजरों का धन्यवाद करना चाहिए, जो कि हमें भले-बुरे लोगों की पहचान करने में हमारी मदद करती हैं, ताकि हम सावधान हो सकें और जहाँ तक नजर लगने की बात है, तो इस बात को सदैव याद रखना कि हमने जैसे कर्म किए हैं ,उनका तो फल भोगना ही है किसी की नजर लगने या न लगने का कोई इसमें लेना-देना नहीं है क्योंकि आपका किया सदैव आपके साथ है। परन्तु हम मानसिक तौर पर इतने कमजोर हैं कि न चाहते हुए भी इन पाखण्डियों के जाल में किसी न किसी कारणवश देखा-देखी फँसे रहते हैं और इनके साथ सम्पर्क में बने रहकर अपना धन व समय बेकार करते रहते हैं।

अपने समय और धन का सदुपयोग करने के लिए आओ, जानें कि किस प्रकार हम नींबू-मिर्ची के प्रयोग से अपने जीवन में लाभ उठा सकते हैं। किसी भी वस्तु का प्रयोग करने से पहले उसके गुणों के विषय में जानना अति आवश्यक है। तो आइए! सर्वप्रथम नींबू पर विचार करते हैं। नींबू खट्टा, ऊष्ण, पाचक, अमाशय की अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, हल्का, नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला, तिक्त और कसैला होता है। यह पित्त के अत्यधिक रिसाव को रोकता है तथा मुँह को स्वच्छ बनाए रखता है। यह कफ को बाहर निकाल देता है और वायु विकार को दूर करता है। नींबू का रस विशुद्ध रूप से नहीं पीना चाहिए। इसे पीने से पहले इसमें थोड़ा पानी जरूर मिला लेना चाहिए। प्रातःकाल उठकर नींबू का रस और थोड़ा सा शहद मिलाकर खाली पेट पीने से शरीर की अच्छी खासी सफाई हो जाती है। इसके लिए कभी-कभी गर्म पानी का भी उपयोग किया जा सकता है।

नींबू भोजन को पचाता है और कब्ज को दूर करता है। यह उल्टी, गले की तकलीफ, गैस एवं गठिया रोग को रोकता है। नींबू आमाशय के सभी लक्षणों में यह अत्याधिक उपयोगी है। प्रोफेसर कॉक्स, डॉक्टर जे.एच. कॅलाग, डॉक्टर विल्सन तथा अन्य विशिष्ट व्यक्तियों की मान्यता है कि नींबू के रस से बुखार में बहुत राहत मिलती है। जल-मिश्रित नींबू का रस मधुमेह के रोगियों की प्यास बुझाने में विशेष रूप से उपयोगी होता है। पेट की गड़बड़ी में नींबू का रस तुरन्त राहत प्रदान करता है। नींबू ज्ञानतन्तुओं की उत्तेजना को शान्त करता है, इससे हृदय शान्त होता है और धड़कनें धीमी हो जाती हैं। नींबू में सेब और अंगूर की अपेक्षा अधिक पोटाशियम पाया जाता है, जो हृदय के लिए बहुत ही हितकारी होता है। नींबू का रस मूत्रल होता है, इसलिए इसके सेवन से मूत्रपिंड एवं मूत्राशय के रोगों में काफी राहत मिलती है, दाँतों एवं हड्डियों को स्वस्थ और मजबूत बनाए रखने के लिए नींबू बहुत उपयोगी है।

वस्तुतः टोने-टोटकों में न फँसते हुए कार्य के प्रारम्भ में मन में या वाणी से निम्नलिखित शुभकामनाएँ व्यक्त करनी चाहिए। जैसे- व्यापार के शुरू में अथवा दुकान खोलते समय- 'ओ३म् स्वस्ति पन्थमनुचरेम' गृह-प्रवेश में- 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अस्पताल में- 'सर्वे सन्तु निरामया' और ड्राइवर की सीट पर बैठते समय- 'धियो यो नः प्रचोदयात्' आदि का व्यवहार शोभनीय है।

❑❑

महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द

(भावेश मेरजा,भरुच-गुजरात,मो0:-09879528247)

श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रसिद्ध शिष्य स्वामी विवेकानन्द को लेकर आर्यसमाज के सदस्यों का अन्य लोगों से कभी-कभी विचार-विमर्श चलता रहता है। देश के कुछ प्रभावी अर्ध-राजनैतिक संगठन अपने प्रचार कार्य में प्रायः विवेकानन्द को महिमामण्डित करने में अतिशयोक्ति और महर्षि दयानन्द की संस्तुति करने में कृपणता का व्यवहार करते हुए दिखाई पड़ते हैं, मुख्यतः इसी को लेकर आर्यसमाज में कुछ असन्तोष का भाव बना रहता है।

आर्यसमाज के क्षेत्र में दयानन्द और विवेकानन्द के सिद्धान्तों और विचारों का तुलनात्मक वस्तुनिष्ठ विवेचन प्रस्तुत करने का श्रेय डॉ० भवानीलाल भारतीय को जाता है, जिन्होंने लगभग चार दशक पूर्व इस विषय को लेकर एक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ **'महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द'** लिखा था, जिसके बाद में भी कई संस्करण प्रकाशित हुए। तत्पश्चात् स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने हिन्दी तथा अंग्रेजी में **'स्वामी विवेकानन्द के विचार'** और **'The Gospel of Swami Vivekananda'** पुस्तिकाएँ लिखकर विवेकानन्द की विचारधारा का यथार्थ स्वरूप पाठकों के समक्ष रखने का स्तुत्य प्रयास किया। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जैसे आर्य मनीषी ने भी अपने प्रवचनों में विवेकानन्द के सम्बन्ध में कई महत्त्वपूर्ण बातें प्रकाशित कीं (द्रष्टव्य **'Flights Around the World' 'अध्यात्म और आस्तिकता'** आदि)। इनके अतिरिक्त कई अन्य आर्य विद्वान् भी समय-समय पर विवेकानन्द को लेकर अपने समीक्षात्मक विचार प्रकट करते रहते हैं।

आर्यसमाज की दृष्टि में दयानन्द ऋषि एवं आप्त हैं, जबकि विवेकानन्द अपने कई धार्मिक, दार्शनिक तथा अन्य विषयों से सम्बन्धित मन्तव्यों को लेकर कुछ भ्रान्त हैं- अनृषि एवं अनाप्त। विवेकानन्द की विचारधारा में अनेक स्थानों पर अन्तर्विरोध या वदतोव्याघात दोष दिखाई देता है। वैदुष्य, वेद-निष्ठा, योगसाधना, तपस्या, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, स्वदेश-भक्ति, सत्य निष्ठा, न्याय दृष्टि, आहार-विहार की पवित्रता, वीरत्व, कर्मठता, शास्त्रार्थ-कौशल, पाखण्ड-खण्डन आदि गुणों तथा कार्यों की दृष्टि से विवेकानन्द दयानन्द की तुलना में निम्न प्रतीत होते हैं। आर्यसमाज के उपर्युक्त विद्वानों ने अपने लेखन में इन बातों के अनेक ठोस प्रमाण प्रस्तुत किए हैं।

परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि देश के कई संगठनों के द्वारा व्यापक स्तर पर किए जा रहे प्रचार-प्रसार के कारण और वैदिक ज्ञान-विज्ञान के तिरोहित हो जाने के परिणामस्वरूप आज बृहद् हिन्दू समाज को दयानन्द की अपेक्षा विवेकानन्द अधिक पसन्द आते हैं। उनकी दृष्टि में विवेकानन्द ही 'हिन्दू धर्म' और 'हिन्दू संस्कृति' के सर्वाधिक मान्य एवं प्रामाणिक 'प्रस्तोता हैं। उन लोगों को ऐसा विश्वास (या भ्रम) है कि भारत को अगर विश्वगुरु बनाना है, तो यह केवल विवेकानन्द का ही अवलम्बन लेकर सम्भव हो पाएगा। अतः वर्तमान में विवेकानन्द को अधिक स्वीकृति प्राप्त है और उन्होंने जो कुछ लिखा और कहा है, प्रायः उसी को 'हिन्दू धर्म' या 'सनातन धर्म' समझने की भूल हो रही है!

विवेकानन्द प्रचलित 'हिन्दू धर्म' एवं अन्य मत-मजहबों के प्रायः सभी परम्परागत विश्वासों, मान्यताओं और क्रियाकलापों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मान्य करते हैं, उनसे अनुकूलन स्थापित करते हैं, या तो उनकी अभिनव व्याख्या कर उनका पोषण या संरक्षण करने का प्रयास करते हैं; और उन मत-पन्थ-मजहबों की किसी प्रमुख साम्प्रदायिक आस्था या उनके मान्य साम्प्रदायिक ग्रन्थों का विशेष खण्डन, आलोचना, निषेध आदि नहीं करते हैं। अपने आपको 'वेदान्ती' बताने

वाले विवेकानन्द का दार्शनिक मत भी द्वैत, अद्वैत आदि सभी वादों के विश्वास करने वाले को एक समान प्रसन्न रखने वाला है। वे मूर्तिपूजा के बड़े पक्षधर हैं और अवतारवाद के पोषक- अपने गुरु को सब अवतारों की अपेक्षा आधुनिक और सबसे पूर्ण अवतार, साक्षात् नारायण घोषित करने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं है। खानपान आदि में भी मानो उन्मुक्त- स्वच्छन्द, मत-पन्थ-सम्प्रदाय की विभिन्नता उनके लिए कोई समस्या ही नहीं, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग तथा वेदान्त जैसे मोहक विषयों पर प्रवचन कर श्रोताओं को सम्मोहित करने की वक्तृत्व कला, आकर्षक व्यक्तित्व, अंग्रेजी भाषा पर अधिकार, विदेशी शासक की कहीं कोई अ-कृपा न हो जाए इस बात का भी पूरा ख्याल, विदेश यात्राएँ और विदेश की भूमि पर दिए गए भाषणों से और वहाँ प्राप्त हुए विदेशी मूल के कुछ और व्यामोह को भेद कर उनके जीवन-कार्य और चिन्तन के अन्तरंग को सम्यक् परखने का सामर्थ्य वेदज्ञ दयानन्द के शिष्यों में ही सम्भव है; क्योंकि दयानन्द ने उन्हें तर्क-प्रमाण से परीक्षा करने की सुस्पष्ट शैली प्रदान की है। इसलिए **'लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः न तु प्रतिज्ञामात्रेण'** को लेकर चलने वाले स्वाध्यायशील आर्यों को प्रत्येक बात का परीक्षण करने की विधि और कौशल्य प्राप्त है। अतः चाहे विवेकानन्द हो, अरविन्द हो, जे. कृष्णमूर्ति हो, रजनीश हो, या अन्य कोई- दयानन्द प्रदत्त सत्य-असत्य की पाँच कसौटियों से सुसज्जित स्वाध्यायनिष्ठ आर्यों को उन महानुभावों की केवल वही बातें मान्य हो सकती हैं, जो तर्क-प्रमाण से सत्य सिद्ध होती हैं; अन्य बातों को मान्य करने का या उनसे प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। रही बात खण्डन की : खण्डनीय बातों का प्रीति एवं विधिपूर्वक- न्यायसंगत ढंग से खण्डन करना आर्यसमाज के आठवें नियम का अंग है, जिसमें कहा गया है कि- अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

हाँ, विवेकानन्द के साहित्य में, उनकी जीवनी में, उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं की कार्यशैली में अगर हमें कोई विशेष बात या गुण दिखलाई देता है, तो उसे ग्रहण करने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। वैदिक मन्तव्यों पर सुदृढ़ रहने के लिए यह कोई आवश्यक नियम नहीं है कि हम अन्यों के गुणों का संज्ञान लेना ही छोड़ देवें। अन्यों में भी ऐसी उत्तम बातें पाई जाती हैं, जिन्हें ग्रहण कर हम अपने जीवन और कार्य को उत्कृष्ट कर सकते हैं- चाहे वे बातें प्रचार-पद्धति विषयक हों, साहित्य सम्बन्धी हों या संगठन आदि के प्रबन्ध को लेकर। गुण ग्रहण के लिए 'सम्पूर्ण बहिष्कार' की भावना से भी हमें स्वयं को बचाना आवश्यक है।

ऋषि दयानन्द ने अपना जीवन वैदिकधर्म को वैश्विक स्तर पर पुनः प्रतिष्ठित करने और विभिन्न मत-पन्थ-मजहब रूपी विघटनकारी तत्त्वों को समूल नष्ट करने के लिए समर्पित किया था। अज्ञान, अन्याय और शोषण के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करने वाले दयानन्द को यह बात भलीभाँति ज्ञात थी कि समाज के स्थापित स्वार्थी शोषक तत्त्व उनकी बातों को पसन्द नहीं करेंगे, प्रत्युत वे सर्वसाधारण को उनके अभिप्राय तथा मिशन के बारे में विभिन्न प्रकार से भ्रमित करने का भी प्रयास करेंगे। तथापि दूसरी ओर उनको यह आशा भी थी कि अगर आर्यसमाज में 'यथोचित व्यवस्था' बनी रही और आगे चलकर उसमें कोई 'गड़बड़ाध्याय नहीं हुआ, तो आर्यसमाज के लोग उनके इस क्रान्तिकारी वैदिक आन्दोलन को दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ाते रहेंगे और आज नहीं तो कल लोगों को सत्य का साक्षात्कार होगा और वे आर्यसमाज को अपना सच्चा हितैषी समझकर उसका स्वागत करेंगे।

आर्यसमाज का मार्ग सुदीर्घ एवं सतत साधना की अपेक्षा रखता है। उसका लक्ष्य बहुत बड़ा है। इसलिए ऋषि दयानन्द के अनुयायियों को- आर्यसमाज के सदस्यों को उत्साहित होकर, धैर्यपूर्वक अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ते रहना है।

'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः'- योगदर्शनम् का यह सूत्र आर्यों का जीवनसूत्र बने रहना चाहिए। तभी सिद्ध हो पाएगा- **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** का दिव्य संकल्प।

❑❑

पृष्ठ २ का शेष

गौरव को कैसे यह पाप करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं?

इसका उत्तर मैं एक पूर्व लेख में दे चुकी हूँ, जो कि मैंने कुछ वर्षों पहले लिखा था, उत्तराखण्ड के महान् जलप्लाव के बाद ('परमात्मा की त्रिकालज्ञता, दयानन्द-सन्देश, जनवरी २०१४), परन्तु प्रकरणानुसार यहाँ पुनः दोहरा रही हूँ। वहाँ मैंने इसके समान प्रश्न उठाए थे कि जो सहस्रों लोग वहाँ काल के शिकार हुए, उन्हें परमात्मा ने वहाँ इकट्ठा कैसे किया? यदि वे वहाँ पहुँचने में स्वतन्त्र थे, तो यह मानना पड़ेगा कि कुछ व्यक्तियों की अकाल मृत्यु हो गई- कुछ लोगों के प्रारब्ध में मृत्यु पहले से होगी, परन्तु कुछ तो अपनी इच्छानुसार वहाँ पहुँचकर फँस गए होंगे! दूसरी ओर, कुछ व्यक्तियों की मृत्यु बाढ़ से लिखी होगी, परन्तु वे अपने कर्म की स्वतन्त्रता के कारण वहाँ गए ही न हों। परमात्मा उन्हें धक्का तो दे नहीं सकता! इसलिए वे प्रारब्धानुसार-प्राप्त मृत्यु से बच गए। जब आप इन प्रश्नों पर विचार करेंगे, तो आपको मालूम पड़ेगा कि प्रायः सभी भोगों में दूसरों का हाथ होता है। हम अपने पुण्यों के कारण धनी परिवार में जन्म ले सकते हैं, लेकिन हमारे पिता के लुट जाने पर हम भी गरीब हो जाते हैं, तो क्या यह हमारे पिता का पाप हम झेल रहे हैं? इस प्रकार प्रायः सभी कर्मफलों में हमें परमात्मा के नियमों से विपर्यय दिखने लगेगा। कब हम अपना फल भोग रहे हैं और कब किसी और का इसमें भेद मिटने लगेगा। सारी कर्मफल-व्यवस्था अव्यवस्था में परिणत होती दिखाई पड़ने लगेगी।

इस सबके मूल में है समय का चलन। परमात्मा वर्तमान् के आधार पर हमारे भविष्य के कर्म को कैसे जान सकते हैं? और यदि जानते हैं, तो हमारी स्वतन्त्रता ही नहीं रही! यदि परमात्मा गौरव को महेश के पास लाते हैं कि महेश का प्रारब्ध पूर्ण हो सके, तो उन्हें गौरव के भावी कर्म-हत्या- के विषय में ज्ञात होगा। अर्थात् गौरव हत्या करने के लिए पूर्व ही बाध्य था। यदि यह भूत-भविष्य का चक्कर न हो, तो यह प्रश्न उठे ही न। इस प्रश्न का महर्षि दयानन्द ने उत्तर दिया था। सो, हम पुनः स्वामीजी के वचनों पर दृष्टि दौड़ाते हैं।

प्रश्न उठता है- "परमेश्वर त्रिकालदर्शी है, इससे भविष्यत् की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा, जीव वैसा ही करेगा। इससे जीव स्वतन्त्र नहीं है। और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता, क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है, वैसा ही जीव करता है।"

महर्षि उत्तर देते हैं, "ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है, क्योंकि जो होकर न रहे, वह 'भूतकाल' और न होके होवे, वह 'भविष्यत् काल' कहाता है। क्या परमेश्वर का कोई ज्ञान होके नहीं रहता, तथा न होके होता है? इसलिए परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत-भविष्यत् जीवों के लिए हैं। हाँ, जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है, वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है। और जैसा ईश्वर जानता है, वैसा जीव करता है, अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान् के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र, और जीव किञ्चित् वर्तमान (के ज्ञान) और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से, जैसा कर्म का ज्ञान है, वैसा ही दण्ड देने का ज्ञान भी अनादि है। दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। क्या कर्मज्ञान सच्चा और दण्डज्ञान मिथ्या हो सकता है? इसलिए इसमें कोई भी दोष नहीं आता।"

इससे भी सम्भवतः आपको बात समझ में नहीं आई होगी, जैसा कि श्री भावेश मेरजा जी ने भी मेरा पूरा लेख पढ़ने के बाद भी शंका जताई थी। वास्तव में, कठिनता यहाँ यह है कि, जबकि हम यह मुँह से तो बोलते हैं कि परमात्मा काल के परे है, परन्तु इस वाक्य का अर्थ समझने में हम असमर्थ हैं। जबकि हम भी काल के परे हैं, तथापि हम प्रकृति द्वारा काल में ऐसे बाँध दिये गए हैं कि हम बिना काल का होना समझ ही नहीं पाते!

तथापि हमें थोड़ा कष्ट करना पड़ेगा। सोचिए कि

हमारा सारा जीवन परमात्मा के सामने एक फिल्म की रील की तरह बिछा हुआ है। वह उससे परे बैठ कर उसे देख रहा है। हमने जो किया, जो कर रहे हैं, और जो करेंगे, वह सब उसको एक साथ ज्ञात है। जबकि हम उस कर्म को अपनी इच्छा से करते हैं, तथापि परमात्मा के लिए पहले सोचा, फिर कर्म किया- यह समय का भेद है ही नहीं। यही उसकी विलक्षणता है, जो हमारी बुद्धि के प्रायः परे है। यदि आपको यह समझ आ गया हो, तो आप तीक्ष्ण बुद्धि के धनी हैं; यदि नहीं, तो हमें मान लेना चाहिए कि यह बात हमारी समझ के परे है, परन्तु जो भी परमपिता-परमेश्वर हमारे साथ कर रहा है, उसके हम सच में भागी हैं, वह कुछ भी अधिक या न्यून हमें नहीं दे रहा है। इस विश्वास के साथ, हमें फिर यह तो मानना पड़ेगा कि कुछ कर्म स्वतन्त्रता के परे होते हैं- यदि आप बाढ़ से पहले उत्तराखण्ड जाने वाले थे और अन्तिम समय में, कुछ मन में अशान्ति के कारण, आपने अपना कार्यक्रम बदल दिया, तो वह अशान्ति सम्भवतः परमात्मा की प्रेरणा थी; और यदि महेश, इच्छा न होने पर भी गौरव से झगड़ पड़ा, तो वहाँ भी सम्भवतः परमात्मा की कुछ अनजानी प्रेरणा थी। वस्तुतः महर्षि के वाक्य "जीव किञ्चित् वर्तमान (के ज्ञान) और कर्म करने में स्वतन्त्र है" में 'किञ्चित्' शब्द कर्म पर भी लगता है, केवल ज्ञान पर नहीं। जब हम कहते हैं कि 'परमात्मा की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता', तब हम परमात्मा के प्रकृति पर पूर्ण वश को स्वीकारते हैं। और चिन्तन करने वाली बुद्धि और संकल्प करने वाला मन, बोलने वाली जिह्वा और कर्म करने वाला शरीर- ये सभी प्राकृतिक हैं, और इसलिए उसके वश में हैं। इसीलिए उसकी आज्ञा के बिना आप उसका भजन भी नहीं कर सकते, ध्यान-भजन के लिए भी आपको उसकी कृपा चाहिए।

हम सभी ने अनुभव किया है कि कभी-कभी अकस्मात् हम कुछ सोच लेते हैं, जो विचार हमारे मन में दूर-दूर तक नहीं था और फिर उसी के अनुसार झटपट कर्म कर देते हैं। उस कर्म का फल प्रायः गम्भीर होता है और उस कर्म के अनुरूप नहीं होता है। सम्भवतः, वह विचार-कर्म हमारा नहीं था, परमात्मा का प्रेरित था। अपने जीवन में भी खोजिए और आपको अवश्य ही कुछ ऐसे विचार मिल जायेंगे, जिनका सोचना आपके द्वारा हुआ, ऐसा मानना कठिन है।

मैंने बताया था कि पिछले वर्ष मेरी दुर्घटना हो गई थी। वस्तुतः, उस दुर्घटना का कारण परिस्थिति नहीं थी। साइकिल चलाते समय काई और कुछ दूरी पर साइकिल चलाता हुआ मेरे सामने आया। दूरी पर्याप्त थी परन्तु मेरे मन में एकदम से एक चित्र कौंधा कि मैं उस व्यक्ति से भिड़ गई और हम दोनों साइकिलों में अटके हुए धरती पर हताहत पड़े हैं। इसके कारण मैंने अपनी साइकिल का ब्रेक अनायास इतनी जोर से दबा दिया कि साइकिल उलट गई और मुझे काफी चोट पहुँची। अन्य किसी को चोट नहीं लगी, केवल मुझे क्षति पहुँची। मैंने सोच-समझकर ब्रेक नहीं दबाया, वह जैसे अनजाने में दब गया। इस छोटे से कर्म से इतनी बड़ी क्षति?। क्या यह परमात्मा का न्याय है? हाँ है- यह कर्म उसी ने करवाया- किसी अन्य पूर्वकृत् कर्म का दण्ड देने के लिए।

इस प्रकार कर्म और उसका फल बड़ा ही कठिन विषय है। उसे कोई भी मनुष्य कभी भी पूरी तरह नहीं जान सकता, ऐसा मेरा विश्वास है। हमारे लिए यह जानना पर्याप्त है कि, जहाँ तक कर्म हम स्वयं सोच-समझ कर करते हैं, वह कर्म पवित्र हो, धार्मिक हो, पक्षपातरहित हो। वह कर्म कुछ लक्ष्य साध कर किया गया हो या नहीं, उसको सदैव परमात्मा को अर्पित कर दें - "हे प्रभु! यह अपनी बुद्धि से परख कर कर्म कर रही हूँ/कर रहा हूँ। यह तेरी सेवा में अर्पित है। अब जो तुझे सही लगे, वह तू कर।" परिस्थितियाँ कितनी भी विकट हों, परमात्मा में कभी श्रद्धा न टूटने दें। महर्षि के अन्तिम क्षणों को याद करके, उनकी श्रद्धा को स्मरण करके, अपने को सान्त्वना दें, शक्ति संजोएँ। वो जो भी करता है, हमारी भलाई के लिए ही करता है, न्यायपूर्ण करता है- इसमें कभी भी संशय न करें।

ओम! परमात्मने नमः।

वैदिक धर्म का सार

(स्वामी वेदानन्द सरस्वती-उत्तराकाशी)

एक दिन जिज्ञासु भाव से आरुणि ब्रह्मचारी अपने पिता सुपर्ण के पास गये। अभिवादन करने के पश्चात् पिता जी से उसने जीवन कल्याण के लिए उपदेश करने की प्रार्थना की।

प्रजापति सुपर्ण आरूणि के प्रति स्नेह पूर्वक बोलेः-

हे पुत्र! सावधान होकर सुनो। मैं तुम्हें सब वेदों का सार, सब विद्याओं का रहस्य, सब उपदेशों का उपदेश, ऋषि-मुनियों का तत्वज्ञान, सब पदों में परम पद, सम्पूर्ण जीवन की परम उपलब्धि बतलाता हूँ। इसे सुन कर जीवन में धारण करो।

इदं च त्वां सर्व परं ब्रवीमि।
पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।।
न जातु कामान्न भयान्नलोभाद्।
धर्मं जह्यात् जीवितस्यापि हेतोः।।

हे तात्! मैं यह तुम्हें महाविशिष्ट, पवित्रतम पद और सर्वोत्कृष्ट विज्ञान का उपदेश करता हूँ। इसे सदा याद रखो कि किसी कामना के वशीभूत होकर किसी भय से अथवा लोभ से और मृत्यु भी यदि आड़े आ जाये, तब भी जीवनरक्षा के लोभ से, धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि-

नित्यो धर्मः सुखदुःखे तु अनित्ये।
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।
त्यक्त्वानित्य प्रतितिष्ठस्व नित्ये।
संतुष्यं त्वं तोषपरो हि लाभः।।

धर्म नित्य है। सुख-दुःख तो अनित्य हैं। जीवात्मा नित्य है। शरीरादि हेतु अनित्य हैं। अनित्य का परित्याग करके नित्य में प्रतिष्ठित होवो। उसी में सन्तुष्ट होवो। सन्तोष से बड़ी कोई उपलब्धि नहीं है। धर्म में प्रतिष्ठा का लाभ सौभाग्यशाली लोगों को मिनता है।

आरूणि ने अपने पिताजी से धर्म विषय पर कुछ अधिक विस्तार से प्रकाश डालने की प्रार्थना की। कहा कि हे पिता! धर्म क्या है? इसे विस्तार से बतलाइये।

सुपर्ण स्नेहपूर्वक आरूणि से बोले कि मैं तुम्हें धर्म विषय पर विस्तार से ही बतलाता हूँ। उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

१. ऋषियों का कथन है :- सत्यं वदन्ति इति धर्मं वदन्ति। अर्थात्- सत्य का उपदेश धर्म का ही उपदेश है। वह धर्म, धर्म है ही नहीं, जिसमें सत्य ना हो। सत्य, धर्म का मूल है। जैसे- मूल के नष्ट हो जाने पर फल, फूलसहित वृक्ष ही नष्ट हो जाता है। वैसे ही सत्य-रहित धर्म निष्प्राण है। वह धर्म नहीं, पाखण्ड बन कर रह जाता है।

सत्येन उत्तभिता भूमि, सत्येन वायु आवाति, सत्येनादित्यो रोचते दिवि, सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्मात्सत्यं परमं वदन्ति।।

अर्थात् सत्य पर ही यह भूमि स्थित है। सत्य से ही वायु बह रहा है। सत्य के प्रकाशनार्थ द्युलोक में सूर्य चमक रहा है। सत्य से ही वाणी की लोक में प्रतिष्ठा है। सत्य पर ही जगत् के सब लौकव्यवहार टिके हुवे हैं। इसी कारण ऋषि-मुनि सब एक स्वर से सत्य को परम पद बतलाते हैं। सत्य, धर्म का प्रथम आयाम है।

(२) जो व्यक्ति जीवन में सत्य को सब से प्रथम स्थान देता है, वह निश्चय से महान है। अतः व्यक्ति को प्रथमतः सत्य को जानने का उद्यम करना चाहिये। सत्य का ज्ञान वेदविद्या के बिना नहीं हो सकता। इसीलिये शास्त्र उद्योग करते हैं:- सत्यं वेदात् प्रसिद्धति। अर्थात्- सत्य की प्राप्ति वेद द्वारा ही सम्भव है, दूसरा कोई उपाय नहीं।

त्रयी विद्या देवयानः पन्था।
एतत् घोरतमं पापं वेदानध्ययनं तु यत्।
वेदानधीत्य यो द्विजः अन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जिवन्नेव शुद्रत्वं आशु गच्छति सान्वयः।।

(मनुस्मृति)

अर्थात्- त्रयीविद्या देवयान का मार्ग है। वेद का स्वाध्याय न करना मानवजीवन का घोरतम पाप है। वेद का परित्याग कर जो व्यक्ति अनार्ष ग्रन्थों में अपना श्रम, शक्ति और समय व्यतीत करता है, वह अपने जीवनकाल में ही अपने कुल परिवारसहित शूद्रता को प्राप्त हो जाता है। उसका पतन सुनिश्चित है। जो नित्य वेद का स्वाध्याय करता है, वह धर्म का ही संचय करता है। इसलिये वेद का स्वाध्याय परम धर्म है। वेद का स्वाध्याय धर्म का द्वितीय आयाम है। वेद के स्वाध्याय से व्यक्ति ऋषिऋण से अनृण होता है। देवयान का पथिक बन कर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। तस्मादग्नीन् परमं वदन्ति- इसी लिये ज्ञानाग्नि जो वेद के स्वाध्याय से प्रज्वलित होती है, को परम धर्म कहा जाता है। वेद-ज्ञान के प्रकाश में ही सत्यासत्य का ज्ञान होता है।

(३) मानसिक सजगता, पवित्रता, सरलता, सज्जनता, ध्यान और मनन वेदज्ञान से रंगत होने के उपाय हैं। जो व्यक्ति मनसा सजग नहीं, वह देखता हुवा भी नहीं देखता। सुनता हुवा भी नहीं सुनता। वह वेद को कैसे समझ सकता है।

अतैव हे तात! मानसं वै प्राजापत्यं पवित्रम्। मानसेन मनसा साधु पश्यति। मानसा ऋषयः प्रजा असृजन्त। मानसे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्मात् मानसं परमं वदन्ति।

इसलिए हे तात्! मानसिक सजगता को प्रजापति की छलनी कहा जाता है। इस छलनी से छान कर ही धर्माधर्म का यथार्थ बोध होता है। मन के अवधान से ही व्यक्ति उचित को निहार सकता है। उसी से ऋषि जन दैवीप्रजा को उत्पन्न करते हैं। मन के शिवसंकल्प में ही सब जगत् प्रतिष्ठित है। इसीलिये मानसिक शिव-संकल्प को परम धर्म कहा जाता है। यह धर्म का तृतीय आयाम है।

(४) मनोनिग्रह- शम्, धर्म का चतुर्थ आयाम है। मनोनिग्रह के अभाव में शिवसंकल्प भी सम्भव नहीं है। इसीलिये शास्त्रकार कहते हैंः-

शमेन शीन्ताः शिवमाचरन्ति।
शमेन नाकं मुनयोऽन्वविन्दन्।
शमो भूतानां दुराघर्षम्।
शमे सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्मात्शमः परमं वदन्ति।

अर्थात्- शान्त धीरपुरुष शम् की शक्ति से ही शिव कल्याणकारी धर्म का आचरण करते हैं। मुनिजन शम् की शक्ति से ही स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। जन सामान्य के लिये शम् का अनुपालन दुष्प्राप्य है। शम् की शक्ति से सब जगत् प्रतिष्ठित है। इस कारण शम् को मनिषियों ने परम् धर्म कहा है।

(५) इन्द्रिय निग्रह- दम, धर्म का पञ्चम आयाम है। इन्द्रियनिग्रह के बिना व्यक्ति धर्मपथ में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयम्भूः- अर्थात्- परमेश्वर ने इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है। वे सदैव विषयाभिमुख होकर दौड़ती रहती हैं।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथिनि हरन्ति प्रसभं मनः।।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

(गीता)

अर्थात्- मानव की इन्द्रियाँ ऐसे प्रमथन स्वभाव वाली हैं कि वे प्रयत्नशील मनुष्य के मन का भी बलपूर्वक हरण कर लेती हैं। उसे विषयों से जोड़ देती हैं। जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ स्वाधीन हों, उसी की बुद्धि स्थिर हो सकती है। स्थिर बुद्धि में ही धर्म का ज्ञान होता है। इसीलिये शास्त्र का वचन हैः-

दमेन दान्ता किल्विषमवधून्वन्ति।
दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरं गच्छन्।

दमो भूतानां दुराधर्षम्।
दमे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तस्मात् दमः परमं वदन्ति।

अर्थात्- इन्द्रिय-निग्रह से संयमी व्यक्ति अपने पापों को धो डालते हैं। इन्द्रिय-निग्रह से ब्रह्मचारी उच्चतम आदर्श को प्राप्त करते हैं। इन्द्रिय-निग्रह बच्चों का खेल नहीं हैं। यह जन सामान्य के लिये दुष्प्राप्य है। सब सद्गुण इन्द्रिय-निग्रह के आश्रित हैं। इसी कारण दम को परम धर्म कहा जाता है। अतैव जीवन के उत्कर्ष के लिए दमन अनिवार्य कदम है।

(६) इन्द्रिय-निग्रह की साधना के लिए व्यक्ति को तप करना पड़ता है। तपस्वी व्यक्ति ही जीवन में विजय प्राप्त करते हैं।

तपसा किल्विषं हन्ति। तपसा देवा देवतामग्रे आयन्।

तपसः ऋषयः सुवरमन्वविन्दन्। तपसा सपत्नान् प्रणुदामाराति।

तपसि सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्मात् तपः परमम् वदन्ति।। तपोब्रह्मः।।

अर्थात्- तप से सब पाप भस्मीभूत् हो जाते हैं। तप से ही तपस्वी देवताओं से उत्तम स्थान बना लेते हैं। ऋषिगण तप से सुवरों को प्राप्त करते हैं। तप से तपस्वी अपने शत्रुओं को भी जीत लेते हैं। तप से ही सारे लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इसी कारण ऋषि लोग तप को परम धर्म बतलाते हैं। तप धर्म का ही षष्ठम् आयाम है। अतपस्वी व्यक्ति धर्मरक्षा नहीं कर सकता। तप ब्रह्म का ही रूप है।

(७) धर्म का सप्तम आयाम-दान है। दाने धर्म-मूलम्- दान में धर्म का मूल छिपा हुआ है अथवा कहो कि दानं धर्मः। अर्थात् दान धर्म का ही रूप है। जिस समाज में दान की प्रवृत्ति क्षीण हो जाये, वहाँ धर्म जिन्दा नहीं रह सकता। धर्म हमें कमा कर खाने की बात सिखाता है। कर्महीन, आलसी व्यक्ति अपने शरीर का भी पोषण नहीं कर सकता। पर-पोषण की बात तो वह सोच ही नहीं सकता। अपनी नेक कमाई का दशांश व्यक्ति जब दान करता है, तो धर्म दस कदम आगे बढ़ जाता है।

दानं यज्ञानां वरूथम् दक्षिणा लोके दातारं सर्वं भूतान्युपजीवन्ति।

दानेनारातीरयानुदन्ति। दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति। दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्माद्दानं परमं वदन्ति।।

अर्थात्- यज्ञों में दक्षिणा का दान यज्ञों की ढाल बन कर रक्षा करता है। दक्षिणाहीन यज्ञ, यज्ञ ही नहीं रहता। संसार में सभी प्राणियों का जीवन दाता पर आश्रित होता है। दान से शत्रु पर विजय प्राप्त हो जाती है। द्वेष करने वाले भी दानदाता के मित्र बन जाते हैं। दान में सब गुण प्रतिष्ठा पाते हैं। इसी कारण दान को वेदादि शास्त्रों में परम धर्म कहा है। न तत् सखा यो न ददाति सख्यम्। अर्थात् वह सखा, सखा ही नहीं जो समय पर मित्र की सहायता नहीं करता। अतः दान धार्मिक जीवन का प्राण है।

(८) यज्ञ, धर्म का अष्टम् आयाम है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण का वचन हैः-

अजातो वै तावत् पुरुषो यावन्न यजते।।
३.३.४.८

अर्थात्- जो व्यक्ति यज्ञ नहीं करता, वह मानो पैदा ही नहीं हुआ। उसका जन्म लेना और न लेना समान ही है। प्रत्युतः जन्म न लेता, तो अच्छा था। मानव जन्म लेकर यज्ञ नहीं करता, तो वह नित्यप्रति अपने पापों में वृद्धि करता है। यज्ञ यजमान का दूसरा जन्म है। इसी से व्यक्ति द्विज कहलाता है।

अग्निहोत्रं सायं प्रातः ग्रहाणां निष्कृतिः।
स्विष्टं सुहुतं यज्ञक्रतुनां प्रायणम्।
स्वर्गस्य लोकस्य ज्योति।
यज्ञेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति।
यज्ञेनासुरानपानुदन्त। यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तस्माद् यज्ञं परमं वदन्ति।।

अर्थात्- अग्निहोत्र से प्रातः सायं घरों का परिशोधन

होता है। स्विष्टकृत यज्ञ, कर्त्ता के कल्याण का पथ है। यज्ञ स्वर्गलोक की ज्योति है। यज्ञकर्त्ता से द्वेष करने वाले भी उस के मित्र बन जाते हैं। यज्ञ से असुर आदि दुष्ट दूर भाग जाते हैं। सारा जगत् यज्ञ में प्रतिष्ठित है। यह सम्पूर्ण विश्व यज्ञरूप ही है। पुरुष का जीवन भी विश्व की प्रतिकृति है। इसलिये यज्ञ को धर्म का ही रूप कहा जाता है। पुरुषो वै यज्ञः। जीवन यज्ञ है।

मुखं वा एतद् यज्ञानां यदग्निहोत्रम्। शत०

अर्थात्- सभी यज्ञों में अग्निहोत्र प्रधान है। यह सब यज्ञों की मूल प्रकृति है। भवसागर को पार करने के लिये अग्निहोत्र उत्तम नौका है। याज्ञिक स्वर्ग को जाता है तथा अयाज्ञिक की अधोगति होकर वह नरक में प्रवेश करता है। याज्ञिक देवऋण से अनृण होता है।

(९) प्रजनन धर्म का नवम् आयाम है। धर्म का उपदेश मनुष्य जाति के उत्कर्ष के लिए है। आहार, निद्रा, भय और सन्तोनोत्पत्ति तो पशुओं में भी मनुष्यों के समान ही देखी जाती है। किन्तु मनुष्य में धर्माचरण की प्रवृत्ति एक ऐसी विशेषता है, जो मनुष्य को ऋषि और देवता बना देती है। यदि धरती पर मनुष्य की उत्पत्ति न होती, तो यहाँ पशुराज होता। बलवान पशु निर्बल को मार कर खा जाता है। मनुष्य भी यदि वैसा ही आचरण करे, तो वह पशु का बड़ा भाई कहलायेगा। धरती पर सुख-शान्ति का साम्राज्य हो- इसके लिए धर्मात्मा पुरुषों का अवतरण अनिवार्य है। सदाचारी, तपस्वी, धर्मात्मा व्यक्ति ही सदाचारी, तपस्वी, धर्मात्मा सन्तान को जन्म दे सकता है। और ऐसी सन्तान को जन्म देना एक पवित्रतम् कर्म है। पति-पत्नी प्रजनन औरस् सन्तान को जन्म देते हैं। विद्वान् धर्मात्मा आचार्य धर्म का संस्कार करके छान्दस् सन्तान को जन्म देता है। इसीलिये ऋषियों का कथन है-

अथ त्रयो वाव लोका।
मनुष्य लोकः पितृलोको देवलोक इति।
सोऽयं मनुष्य लोकः पुत्रेणैव जय्यो भवति नान्येन कर्मणा।
कर्मणा पितृ लोको विद्यया देव लोकः।
देवलोको वै लोकानाँ श्रेष्ठस्तस्मात् विद्यां प्रशंसन्ति।।

अर्थात्- योग्यता भाव से मानव समाज को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक सामान्य श्रेणी के मनुष्य, दूसरे से सत्कर्म करने वाले पितर लोग तथा तीसरे ज्ञानविशिष्ट देवगण। विद्या-विज्ञान के कारण देवलोक सब में श्रेष्ठतम है। सन्तान के बिना गृहस्थ निष्प्रयोजन व निष्फल है। यज्ञादिकर्म के बिना पितृलोक। वानप्रस्थ व्यर्थ है तथा विद्याविहीन देवलोक वा सन्यास व्यर्थ है।

प्रजननं वै प्रतिष्ठा लोके साधु प्रजाया तन्तुं तन्वानः पितृणामनृणो भवति। तदेव तस्या अनृणं तस्मात् प्रजननं परमं वदन्ति।।

अर्थात्- धर्मानुसार पाणिग्रहण संस्कार करके सन्तानोत्पत्ति करने वाले गृहस्थ की समाज में प्रतिष्ठा होती है। लोग उसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। क्योंकि सन्तान केवल एक गृहस्थ की ही नहीं, अपितु समूचे राष्ट्र की अमूल्य निधि होती है। आज का बालक ही कल राष्ट्र का नागरिक बनता है और राष्ट्र को नई दिशा देने में सक्षम होता है। सज्जन पुरुष सन्तानोत्पत्ति के द्वारा कुलधर्म की रक्षा करते हुवे पितृऋण से अनृण होते हैं। इसलिये शास्त्रानुकूल प्रजनन को ऋषिगण धर्म का अङ्ग बतलाते हैं। अतः सद्गृहस्थों का कर्त्तव्य है कि वे ऋतुधर्म का पालन करते हुवे श्रेष्ठतम् औरस् सन्तान को जन्म दें। फिर तपस्वी आचार्यों का कर्त्तव्य है कि वे छान्दस् सन्तान को जन्म देकर दैवी सृष्टि का सृजन करें। यह धरती का श्रेष्ठतम् कार्य है।

(१०) अयमग्निरूप सद्य इह सूर्य उदेतु ते।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाचित् तमसस्परि।।

अथर्व. ५.३०.११।।

अथर्ववेद के इस मन्त्र में मानव जीवन के लक्ष्य की ओर संकेत है। हे मनुष्य! इस अग्नि के समीप आ। यह सूर्य तेरे पथ को प्रकाशित करने के लिये ही उगा

है। विषय-वासनाओं के घने काले अन्धकार से पार होकर भयानक मौत को परास्त करके और अमर पद को प्राप्त कर। यह अमर पद क्या है? उस के प्रत्युत्तर में यमाचार्य नचिकेता को उपदेश करते हुवे कहते हैं :-

सर्वे वेदा यत्पदमामनिन्ति तपासि सर्वाणि यद्वदन्ति।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।

अर्थात्- सब वेदों में जिस पद का बार-बार विचार किया गया है। सभी तपस्वी जिस विषय का उपदेश करते हैं। जिसके पाने की कामना से यती लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उस पद को संक्षेप में 'ओम्' नाम से जाना जाता है।

एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म ह्येतदेवाक्षरं परम्

एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।

अर्थात्- यह अक्षर ही ब्रह्म है, यही परम पद है। इस अक्षर को जान कर व्यक्ति जिस वस्तु की कामना करता है, वह उसे प्राप्त हो जाती है। धर्म का अन्तिम प्रयोजन ईश्वर साक्षात्कार ही है। अतैव ब्रह्म साक्षात्कार धर्म का दशं आयाम है।

यतो अभ्युदय निःश्रेयस्सिद्धिः सः धर्म।।

वैशेषिक (१.१.२)

अर्थात्- जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति हो, वही धर्म है। उपर्युक्त दस लक्षण धर्म से ही अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि होती है।

सुखस्य मूलं धर्मः।।

अर्थात्- मानव जीवन के समस्त सुखों का मूल धर्म है। धर्माद्विपरीतं पापम्। धर्म के विपरीत सब पाप है। और पाप ही दुःख है। धर्म ही है, जो प्राणिमात्र की रक्षा करता है। जो धर्म की रक्षा नहीं करते, धर्म भी उनकी रक्षा नहीं करता। इसीलिये मनु महाराज कहते हैं:- धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।

मनु० ८.१५।।

अर्थात्- जो धर्म को नष्ट करता है, धर्म उसे मार देता है। जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है, इसलिये स्वजीवन रक्षा के अभिलाषी जन को धर्म की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।

धर्मेण पापमपनुदन्ति, धर्मो हि परमो लोके, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्मात् धर्मं परमं वदन्ति।।

तैत्तिरीय आख्यक १०/६२।।

अर्थात्- धर्म के आश्रय पर सारा जगत प्रतिष्ठित है। सारी प्रजा धर्मनिष्ठ व्यक्ति की ओर आकर्षित होती है। धर्म से सब पाप क्षीण हो जाते हैं। धर्म ही जीवन का परम पद है। धर्म सब वेदों का सार है।

आरूणि अपने पिता के उपदेश को सुन कर कृत्कृत्य हुआ और उनके चरण-स्पर्श करके अभिवादन किया। पिता को विश्वास दिलाया कि मैं यावत् जीवन इस दशआयामी धर्म का दृढ़ता से अनुपालन करूँगा।

सुपर्ण ऋषि ने भी आरूणि को आर्शीवाद दिया- हे तात्! ईश्वर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करे और इस धर्म के अनुपालन से तुम अभ्युदय और निःश्रेयस् को प्राप्त करो। धर्म ही राष्ट्र के सुख और शान्ति का उपाय है। धर्म की संक्षेप में चार पदों द्वारा ही व्याख्या की जा सकती है :-

सत्यं धर्मस्य प्रथमोपादः द्वितीयस्तु दया स्मृतम्।

दानमस्य हि तृतीयोपादः पादः चतुर्थः श्रमणम्।।

अर्थात्- सत्य, दया (न्याय), दान और श्रम ये चार धर्म के चतुष्पाद हैं। इनमें से एक-एक की रक्षा के लिए चार वर्णों की स्थापना की गई। ब्राह्मण सत्य की रक्षा अध्याय से, क्षत्रिय दया की रक्षा न्याय से, वैश्य दान की रक्षा आय से और शूद्र श्रम की रक्षा पुरुषार्थ से करता है। व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए चार आश्रमों की व्यवस्था की गई। इस वर्णाश्रम-व्यवस्था में धर्म ओतप्रोत हो रहा है। यह ही एकमात्र मानव जाति के कल्याण का उपाय है।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०४/२०१६
भार- ४० ग्राम

अप्रैल 2016

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

२२७७

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में........................
ग्राम........................
डा0 ....
जिला........................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी वावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।